ग्रन्थ क्रमांक 125

मुद्रा और चारी : एक परिचय

डॉ० कल्पना द्विवेदी

श्री एकरसानन्द आदर्श संस्कृत महाविद्यालय

मैनपुरी 205001 (उ०प्र०) 9411248134
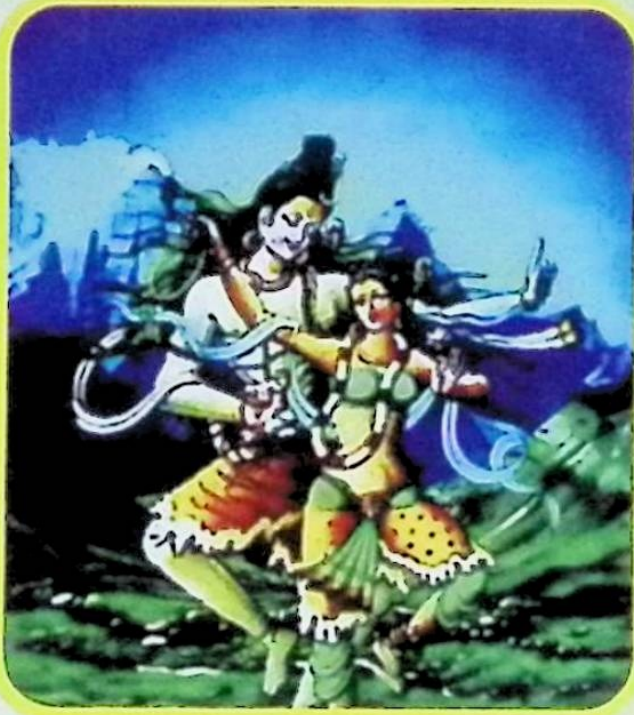
देववाणी परिषद, दिल्ली

आर ६, वाणी विहार, नई दिल्ली ११० ०५१

(भारतम्)

ग्रन्थ क्रमांक 125

मुद्रा और चारी: एक परिचय

डॉ कल्पना द्विवेदी

देववाणी परिषद, दिल्ली
आर ६, वाणी विहार, नई दिल्ली ११० ०५९
(भारतम्)

मुद्रा और चारीः एक परिचय

लेखिकाः डॉ० कल्पना द्विवेदी (अ०प्रो० साहित्य)

प्रकाशकः देववाणी – परिषद, दिल्ली
आर–6 वाणी विहार, नयी दिल्ली 110 059 (भारतम्)

मुद्रकः राष्ट्रीय प्रिटिंग प्रेस, मैनपुरी 205001 (उ०प्र०)
संस्करणः प्रथम वर्ष 2015

ISBN 978-81-85924-18-2
मूल्य 250/– रूपये

Author: Dr. Kalpana Dwivedi

Publiser: Devvani Parishad Delhi
R-6 Vani Vihar, New Delhi 110 059 (Bharat)

Printing: Rashtrya Printing Press, Mainpuri 205001
Edition: First edition year 2015
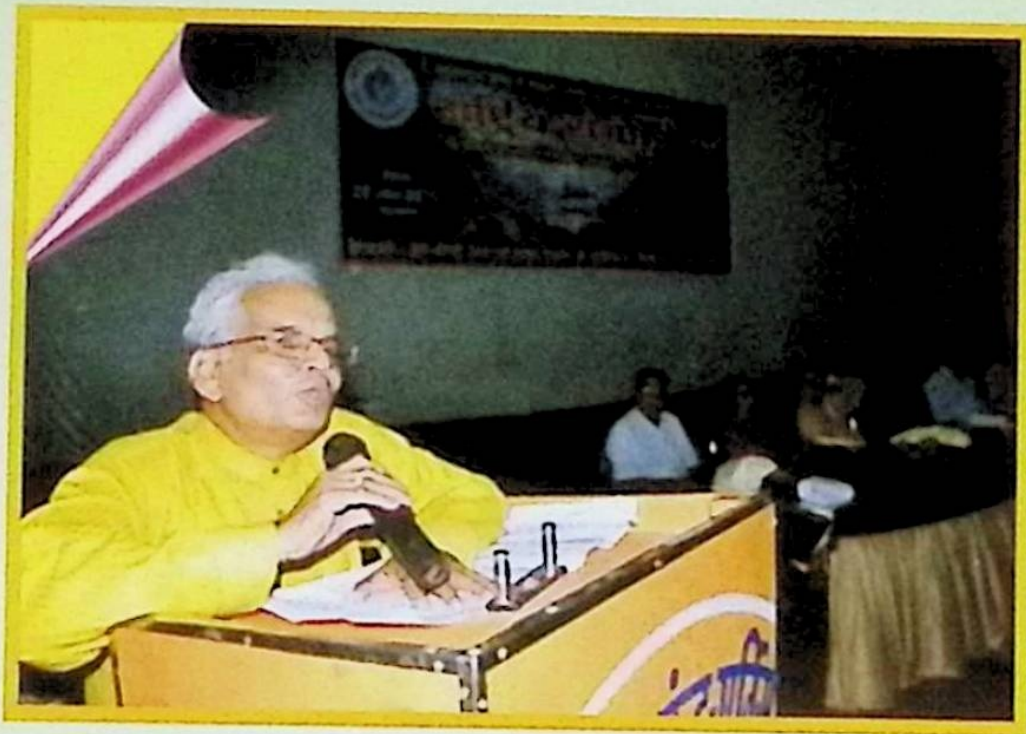
साक्षात् नंदिकेश्वर की परम्परा के
आचार्य श्री गुरूदेव को सादर शब्दमयी भावांजलि

स्थापना: -1970 [illegible] 9 8367

देववाणी-परिषद्, दिल्ली
DEVAVANI PARISHAD, DELHI
१८६० ई. वर्षस्य २१ [illegible]
Academic Cultural Literary Society Regd. under XXI Act of 1860
कार्यालय: - आर - ६, वाणीविहार:, नवदेहली, ११००५९ (भारतम्)
Off. R - 6, VANI VIHAR, NEW DELHI 110059, INDIA email - devavanipd@gmail.com
प्रा. रमाकान्तशुक्ल:
महासचिव:
011 - 25581645
095605 32392

प्रास्ताविकम्

'देववाणी-परिषद्, दिल्ली' त्यनया संस्थया द्यावधि 124 ग्रन्थाः प्रकाशिताः ये संस्कृतभाषामाध्यमेन भाषान्तर-माध्यमेन वा संस्कृतसाहित्यस्य गौरवं प्रस्तुवन्ति। इदानीं 125तम ग्रन्थरूपेण डॉ० कल्पनाद्विवेदी-महाभागया प्रणीतं 'मुद्रा और चारी' ति शीर्षकान्वितं ग्रन्थं प्रकाशयन्ती परिषद् हर्षमनुभवति।

अस्मिन् ग्रन्थे विदुष्या लेखिकया नाट्यशास्त्रोक्तानां हस्तमुद्राणां, चारीणाम्, आङ्गिकाभिनयस्य विविधानां पात्राणां भाषायाश्च सप्रमाणं विवेचनं प्रस्तुतम्। इदं विवेचनं नाट्यशास्त्रे रुचिमतां पाठकानां कृते उपकारि भविष्यतीति मे विश्वासः।

मया देववाणी-परिषत्पक्षतो डॉ० कल्पना द्विवेदी सादरं वर्धाप्यते यया महनीयं ग्रन्थं प्रणीय साहित्य-जगतः श्रीवृद्धिर्विहिता। शुभकामाशिषः

[signature]

(रमाकान्त शुक्लः) महासचिवः

दिनाङ्क 7/7/2015 ई.

कल्पना!

अनेक शुभाशंसनम्।

लिखा हुआ "नृत्यकलाओं की सम्प्रेषणीता के सन्दर्भ में नाट्यशास्त्र की हस्तमुद्राएँ" नामक शोधप्रबन्ध मनोयोगपूर्वक आमूलचूल पढ़ गया। महामुनि भरत के द्वारा अनेक संस्कृत पद्यों का उद्धरण देते हुए, जो उन्होंने नृत्ताचार्य भगवान् शङ्कर से सीखा था, लिखा था, उसके सारे उदाहरणों को देते हुए आप के द्वारा लिखा गया यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य की अप्रतिम धरोहर है, ऐसा मैं डिंडिमघोष कहता हूँ।

आपने अखण्डरूप से अपना सारा जीवन इस पवित्र कार्य में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए खपा दिया, एतदर्थ आप भगवती ब्रह्मचारिणी की तरह संस्कृत जगत् में सदा के लिये अमर हो गयी हैं, ऐसी मेरी धारणा है।

अनेक शुभैषणाओं के साथ

सदैव आपका

पण्डा दुर्गदत्त उपाध्याय 'दत्त'

प्राक्कथन

विश्व के प्राचीनतम कलाशास्त्र आचार्य भरत मुनि द्वारा प्रचीन नाट्यशास्त्रं ईसापूर्व षष्ठी शताब्दी की संरचना के रूप में पाश्चत्य एवं भारतीय विद्वानों के द्वारा प्रायशः सर्व स्वीकृत है। यह एक ऐसा सुगठित शास्त्र है,जो भारतीय नृत्य एवं नाट्य की सम्पूर्ण प्रविधियों का वर्णन करता है, निर्देशन करता है। यह भारतीय समाज में प्रचलित ईसा पूर्व की अनेक धारणाओं को समीक्षात्मक दृष्टि से एवं उनके प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से अपनी प्रत्यग मेधा का प्रयोग करता है। जिसे पढ़कर और देखकर आज भी मानव समाज मन्त्रमुग्ध

हो उठता है। अभिनय के चार आंगिक, वाचिक आहार्य और सात्विक आलेख की शुद्धता प्रत्यग रमणीयता एवं श्रव्य माध्यम में दृश्य माध्यम की पूर्व पीठिका को बढ़े गहरे शब्दों में अभिव्यक्त करता है। इसी के साथ कुछ अत्यन्त महत्व व पूर्ण उपांग को भी हमारे सामने उपस्थित करता है, साथ ही उनकी उपादेयता तथा उनकी प्रस्तुति के लिए प्रत्यक्ष मार्गदर्शन भी करता है।

आचार्य परम्परा, नाट्यशास्त्र का दैवीय उद्‌भव, नाट्यशास्त्र की समाज को एक (मेवा द्वितीय) ब्रह्म तक ले जाने की प्रविधि, नृत्य, संगीत, वाद्य, चर्चरी ध्रुवा मुद्रा पदसंचलन पाठ एवं प्रस्तुतिकरण जैसे महत्वपूर्ण विषय भी नाट्य शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय है।
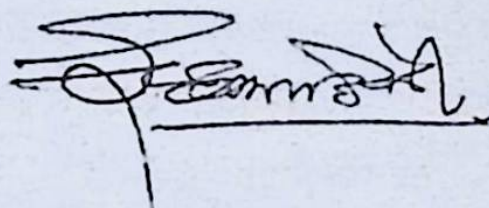
इस सब की समग्रता से संग्रहीत नाट्य शास्त्र की यह विधा संभवतः विश्व की सबसे प्राचीन सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि का इतिहास रचती है। सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र का एकशः प्रयोग तो किसी भी प्रयोगकता के लिए सहज सम्भव नही है। किन्तु उसके प्रायः प्रयोग में आने वाले मुख्य कारक हैं– हस्त मुद्रा, चारी, आंगिक संप्रेषणीयता, भाषाविज्ञान, एवं नाट्यशास्त्र, पात्र व भाषा प्रयोग यह पाँच ऐसे आवश्यक विषय हैं। जिनसे सद्य नाट्य प्रयोग नियंत्रित होता है। उपर्युक्त पाँचों प्रकरणों पर डॉ कल्पना द्विवेदी द्वारा विवेचित एवं समीक्षित आलेखों का यह संग्रह अवलोकनीय है। जिनमें मुद्राओं के स्वरूप, स्थापन, प्रदर्शन एवं प्रयोग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नाट्य शास्त्र के वर्तमान प्रयोक्ता आचार्यो में श्री कोवलन नारायण पण्णिकर, श्री रत्नथियम, स्व श्री जावेद, डॉ कमला रत्न, डॉ कमलेश दत्त त्रिपाठी डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. राजेन्द्र मिश्र एवं प्रो0 रेवाप्रसाद द्विवेदी जैसे लोग मुख्य रहे हैं– और इनमें से अनेक लोगों के साथ सम्पर्क नाटयीय प्रदर्शन नाट्यगत विधियों में समीक्षा की दृष्टि से रहने का अवसर लेखिका को मिलता रहा है, और राधावल्लभ त्रिपाठी की साक्षात् शिष्या रही हैं।

उनके द्वारा नाट्यशास्त्र पर एक ग्रन्थ पहले ही प्रकाशित हो चुका है। जिसका नाम आधुनिक संस्कृत नाटक एक अध्ययन है। इस ग्रन्थ की नाट्क जगत में काफी चर्चा हो रही है।

प्रस्तुत निबन्ध श्रृंखला भी लेखिका की सूक्ष्म समीक्षण की क्षमता एवं नाट्यशास्त्र के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा का परिणाम है। मेरा सुधीजनों से आग्रह है कि मुझे इन निबन्धों की अपनी नीर, क्षीर, विंवेक दृष्टि से परखें और अपने अभिमंत से अवगत कराए।

मैं कल्पना द्विवेदी को उनके इस नए निबन्ध स्तबक के लिए हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ और माँ सरस्वती से यही प्रार्थना करता हूँ कि वे इसी तरह तपस्वाध्याय निरत रहे।

नैवेद्यम्

काव्य के सगुण साकार स्वरूप को ही हम दृश्यकाव्य कहते हैं जिसे भरतों की विशाल परम्परा अपने अध्यवसाय से सर्वान्तःकरण संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करती हैं इसे ही सुधीजनों ने दृश्यकाव्य रूपक या नाट्य कहा है। यह एक ऐसा प्रयोग विज्ञान है, जिसमें कलाकार अपने सम्पूर्ण शरीर एवं अन्तःकरण को एक ऐसा दृश्य दर्शकों के सम्मुख उपस्थित करता है। जिससे रसाभिव्यक्ति वा अनुभूति दर्शक को सहज समाधि के रूप में होने लगती है। इस प्रक्रिया में उसके अंग एवं वाणी ही उसके उपकरण हो जाते हैं। भावों की इस प्रयोगधर्मिता में नट सर्वाधिक प्रयोग अपने हाथ पैरों एवं मुख आदि का करता है। अतः हस्त मुद्रा एवं चारी को आधार बनाकर यह ग्रन्थ मैंने संकलित करने का प्रयास किया है। किन्तु

आपारितोषादविदुषां न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम्
बलवदपिशिक्षितानां आत्मनः प्रत्ययं चेतः।

महाकवि कालिदास इस सूक्ति के समान ही मेरा हृदय भी अपने विषय में संशयात्मक है।

इस ग्रन्थ के विषय बोध के लिए मैं आचार्य प्रोफेसर श्री राधावल्लभ त्रिपाठी जी की सदा आभारी रहूँगी। जिनके सान्निध्य में मैंने नाट्यशास्त्र का अध्ययन किया एवं प्रयोगगत बारीकियों को सीखा व समझा। प्रोफेसर राजेन्द्र मिश्र अभिराज, प्रो0 रेवा प्रसाद द्विवेदी प्रो0 इच्छाराम द्विवेदी, डॉ0 लालबिहारी शास्त्री, प्रो0 मनुलता शर्मा जी प्रो0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, डॉ पुष्पा दीक्षित, प्रो रहस बिहारी द्विवेदी प्रो रमाकान्त शुक्ल की मैं सदा आभारी रहूँगी। जिनकी कृपा व सन्निकटता ने मुझे नाट्यकला के स्वरूप को समझने की दृष्टि दी।

मैं पुस्तक प्रकाशन के लिए देववाणी परिषद दिल्ली एवं उसके प्रमुख प्रो० रमाकान्त शुक्ल जी का आभार व्यक्त करती हूँ साथ ही इस पुस्तक के मुद्रक श्री राकेश सिंह का आभार व्यक्त करती हूँ।

कल्पना द्विवेदी

विषयानुक्रमणिका

नृत्यकलाओं की सम्प्रेषणीयता के सन्दर्भ में नाट्यशास्त्र की हस्तमुद्राएं

प्राचीनकाल में जब भाषा का विकास नहीं हुआ था, उस समय मानव इंगित मात्र से अपने आशय स्पष्ट करता होगा। आज भी मूक बधिर बच्चे अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति इशारों के माध्यम से ही करते है। यह इंगित धीरे–धीरे कुछ विशिष्ट आशयों में प्रयुक्त हो मानव मन के हर्षोल्लासमय विचारों की अभिव्यक्ति का एक माध्यम बन गए।

मानव अपने हर्षोल्लास को, हाव भाव व नृत्य गीत आदि के माध्यम से प्रकट करता है। इसके लिए वह अपने हाथ, पैर, कमर, मुख ग्रीवा, आदि विविध प्रकार से घुमाकर मोड़कर नवीन अर्थों को दूसरे व्यक्ति को समझा देता है।

भारतीय मनीषी परम्परा में ही प्राचीन काल से ही कला तत्व पर सूक्ष्म गवेषण हुआ है। हमारी समस्त विद्याओं, कलाओं का एक मात्र उत्स वेद है।[1] जिसमें समस्त विद्याएँ व कलाएँ अपने सूक्ष्मतम रूप में (बीज रूप में) विद्यमान है।

यजुर्वेद में तीस मुख्य कलाओं का वर्णन मिलता है।[2] जिसमें नृत्य को द्वितीय स्थान प्राप्त है। भारतीय कलाओं के प्राचीनतम आचार्यों में आचार्य वात्स्यायन ने अपने ग्रन्थ कामसूत्र में चौंसठ कलाओं का निरूपण किया है–

चतु:षष्टि रंगविद्याः कामसूत्रस्यावयविनोवयवभूताः तदभावे कामसूत्रस्याप्रवृत्ते।[3] ये चौंसठ कलाएं निम्नवत् हैं– 1. गीत, 2. वाद्य, 3. नृत्य 4. नाट्य, 5. आलेख्य, 6. विशेषकच्छेद, 7. तण्डुलकुसुमबलि–विकीर्णविकार, 8. पुष्पास्तरण, 9. दशनवसनाङ्गराग, 10. मणिभूमि कर्म, 11. शयनरचन, 12. उदकवाद्य, 13. उदकघात, 14. चित्रयोग, 15. माल्यग्रथन विकल्प, 16. शेखरपीडयोजना, 17. नेपथ्ययोग, 18. कर्णपत्र भंग 19. गंधयुक्ति, 20. भूषणयोजना, 21. इन्द्रजाल, 22. कौचुमारयोग, 23. हस्तलाघव, 24. चित्रशाकपूपभक्ष्य विकार क्रिया, 25. पानकरसरागासव योजना, 26. सूचीवाप कर्म, 27. सूत्रकीड़ा,

28. प्रहेलिका, 29. प्रतिमाला, 30. दुर्वाचक योग, 31. पुस्तकवाचन, 32. नाटिकाख्यायिका दर्शन, 33. काव्य समस्यापूर्ति, 34. पट्टिकावेत्रबाणविकल्प, 35. तुर्ककर्म, 36. तक्षण, 37. वास्तुविद्या, 38. रूप्यरत्न परीक्षा, 39. धातुविद्या 40. मणिरागज्ञान, 41. आकार ज्ञान, 42. वृक्षायुर्वेद योग, 43. मेषकुक्कुटालावक युद्ध विधि, 44. शुकसारिका प्रलाप, 45. उत्सादन, 46. केशमार्जन कौशल, 47. अक्षरमुष्टिका कथन, 48. म्लेच्छित विकल्प, 49. देशभाषाज्ञान, 50. पुष्पशकटिका निमित्त ज्ञानं, 51. धारणमात्रिका, 52. सम्पाठ्य, 53. मानसीकाव्य क्रिया, 54. क्रिया विकल्प, 55. छलितकयोग, 56. अभिधानकोषच्छन्दोज्ञान, 57. वस्त्रगोपन, 58. द्यूतविशेष, 59. आकर्षक्रीड़ा, 60. बालक क्रीडनक, 61. वैनायकी विद्या ज्ञान, 62. वैतालिकी विद्या ज्ञान, 63. आजीव ज्ञान, 64. यन्त्रमात्रिका।

इनमें से कुछ कलाएँ कर्माश्रित, कुछ क्रियाश्रित हैं। इन चौंसठ कलाओं में एक कला नृत्यगीत भी है।[4] जिसमें व्यक्ति अपने अभिनय अंगहार व मुद्राओं के माध्यम से मानसी गंगा की उत्ताल तरगों को मूर्त रूप प्रदान करता है। वह कला नृत्य है। रसार्णवसुधाकर में नर्तक की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी गई है।

नाना प्रकारराभिनयकर्तारो नर्तकाः स्मृताः।[5]

नर्तक जो कर्म करता है, वह नृत्य कहलाता है। शास्त्रीय दृष्टि से नृत्य के दो भेद होते हैं– नृत्य व नृत्त। जिसमें ताल, लय, गीत के साथ भावों का आशय लिया जाय वह नृत्य है, जिसमें ताल, लय की ही प्रमुखता हो वह नृत्त है।

नृत्य जहॉ भावों पर आश्रित होता है, तो वही नृत्त अंग विक्षेप युक्त होता है और ताल लय पर आधरित ।जहॉ नृत्य में किसी पदार्थ या विषय पर अभिनय किया जाता है तो नृत्त किसी भी विषय पर नहीं रहता। नृत्य भावाभिनय सहकारी बनता है, पर नृत्त सौन्दर्य विधायक रहता है। नृत्य का क्षेत्र व्यापक और नृत्त का क्षेत्र स्थानीय होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि नाट्य, नृत्य और नृत्त ये तीनों नाट्यशास्त्र की विकास

परम्परा के द्योतक हैं जिसमें सुख–दुःखात्मक मानव चित्त की विविधता प्रतिफलित होने से मानवीय सरिता में उत्पन्न हिलोरें नृत्य और नाट्य के माध्यम से गतिशील रहती है।

यह नृत्य और नृत्त पुनः दो भागों में विभक्त हो जाता है– एक ताण्डव दूसरा लास्य। इन दोनों नृत्य भेदों को आचार्य भरतमुनि ने स्वयं भगवान शिव से अंगहार सहित सीखा था–

नृत्तांगहार सम्पन्न रसभाव क्रियात्मिका।
दृष्टा मया भगवतो नीलकण्ठस्य नृत्यतः।।[6]

भरत मुनि ने नृत्त, अगंहार, रसभावयुक्त, क्रियात्मकता से मण्डित भगवान् नीलकण्ठ के नृत्य को देखा और उन सब क्रियाओं को शिव से ही सीखा था। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार सन्ध्याकाल में आनन्दमग्न हो भगवान शिव नृत्य करते है। अतः नाट्य में तथा उसको अलंकृत करने वाले नृत्त में उनकी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है–

भगवांश्चानन्द निर्भरतया क्रीडाशीलः सन्ध्यादौ नृत्यतीति। नाट्ये तदुपस्कारिणि च नृत्ते तदुपज्ञम्।। [7]

अतः यह नृत्य व नृत्त दोनों ही शिव शिवा से ही प्राप्त हुए हैं। शिव से प्राप्त नृत्य भेद ताण्डव कहलाता है। यह उद्धत करणों, अंगहारों व आरभटी वृत्ति से युक्त होता है–

उद्धतैः करणैरंगहारैः निर्वर्तितं यदा
वृत्तिरारभटी गीतकाले तत्ताण्डवं विदुः।।[8]

आचार्य भरतमुनि ने अपने चतुर्हस्त प्रमाण (सात्त्विक, वाचिक, आहार्य एवं आंगिक) लक्षण ग्रन्थ में ताण्डव नृत्य के तीन भेद स्वीकार किये हैं चण्ड ताण्डव, प्रचण्ड ताण्डव और उच्चण्ड ताण्डव।[9]

जो नृत्य सुकुमारी पार्वती से प्राप्त है, अत्यन्त सुकोमल अंगहार करण मुद्राओं से अलंकृत, ललितातिललित ताल, लय व गति से युक्त नृत्य का लास्य नामक भेद है।

ललितैरंगहारैश्च निर्वृत्यं ललितैर्लयः।

वृत्तिः स्यात्कौशिकी गीतिर्यत्र तल्लास्यमुच्यते।। [10]

आचार्य भरत मुनि ने अपने ग्रन्थ में वीथी नामक नाट्य भेद के अन्तर्गत द्वादशविध लास्य का वर्णन किया है। ये भेद निम्न हैं– 1. गेय पद 2. स्थितपाठ्य, 3. आसीन, 4. पुष्पगण्डिका, 5. प्रच्छेदक, 6. त्रिमूढ़, 7. द्विमूढ, 8. सैन्धव, 9. उत्तमोत्तमक, 10. विचित्र पद, 11. उक्त प्रयुक्त 12. भावित।

गेयपदं स्थितं पाठ्यमासीनं पुष्पगण्डिका।
प्रच्छेदकस्त्रिमूढञ्च सैन्धवाख्यं द्विमुकम्।।
उत्तमोत्तमकञ्चैव विचित्रपदमेव च ।
उक्तप्रत्युक्त भवञ्च लास्यांगानि विदुर्बुधाः।। [11]

इस प्रकार आचार्य भरत मुनि ने नृत्य व नृत्त के भेद स्वीकार है। जबकि अन्य ग्रन्थों में लास्य के भेद प्राप्त नहीं होते है।
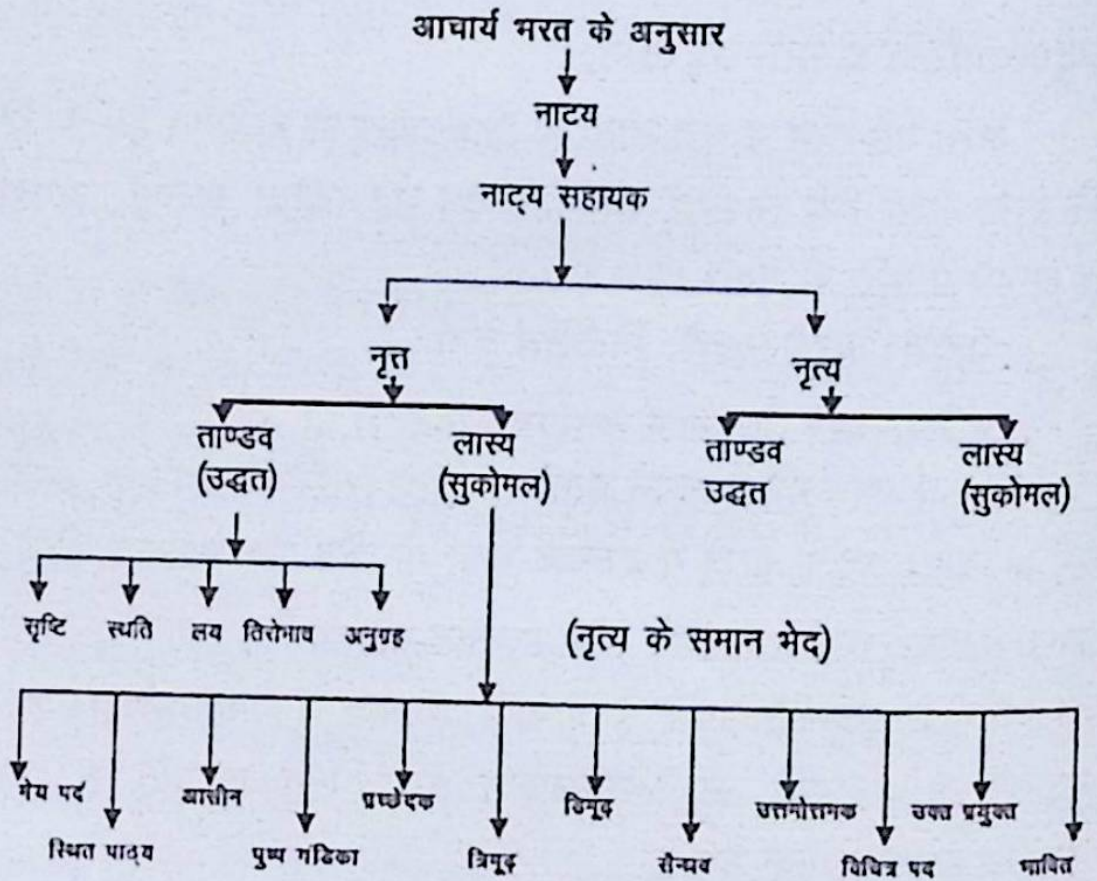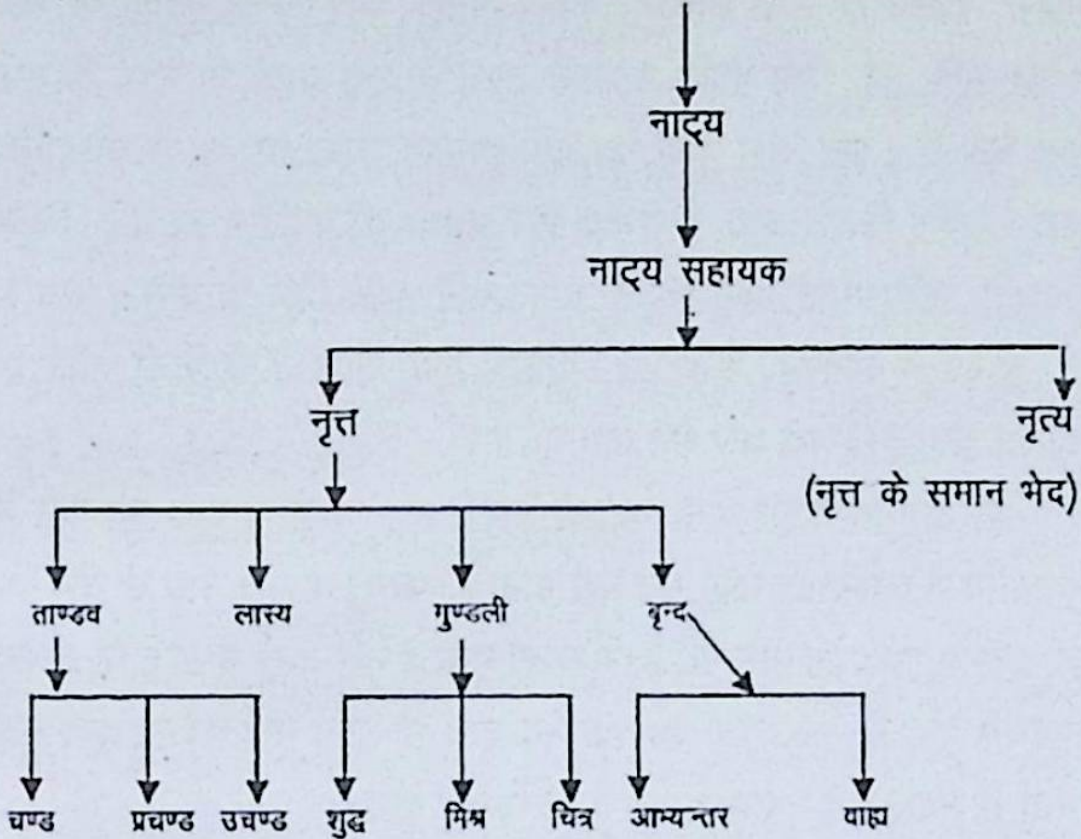
अभिनय प्रयोग की स्थिति में नाट्य के पश्चात् नृत्य का दूसरा स्थान है। इस शब्द की निष्पत्ति नृत् धातु से हुई। धनंजय के अनुसार जो भाव पर आश्रित होता है वह नृत्य है, जिसमें अभिनय के द्वारा किसी पदार्थ को अभिव्यक्त कर अन्तर भावों को अभिव्यक्त किया जाता है, वह नृत्य है। अभिनय दर्पणकार ने भी रस तथा भावों के व्यंजनाकार प्रदर्शन को नृत्य कहा है।[12] नृत्य शब्द की उत्पत्ति– नृत्री गात्र विक्षेपे धातु से हुई है। नन्दिकेश्वर के अनुसार– ''भावाभिनय हीनं नृत्यमित्यभिधीयते।'' ताल लय के अनुरूप हस्त पाद का अंग संचालन नृत्त है। आचार्य नन्दिकेश्वर के अनुसार इसे निम्न अवसरों पर किया जाता है–

नृत्तं तत्र नरेन्द्राणामभिषेके महोत्सवे।
यात्रायां देवयात्रायां विवाहे प्रियसंगमे।।
नगराणामगाराणां प्रवेशे पुत्र जन्मनि।
शुभार्थिभिः प्रयोक्तव्यं मांगल्यं सर्वकर्मभिः।।[13]

नाट्यशास्त्र में नृत्य के दो भेद माने गये है– ताण्डव और लास्य। उद्धत प्रयोग वाला ताण्डव नृत्त पुरुषों के लिए है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में

कथा है कि दक्ष प्रजापति के यज्ञ ध्वंसावसर पर सन्ध्याबेला में शिव ने विविध अंगहारों, रेचकों के साथ ताण्डव किया। अंगहार पिण्डीबन्ध रेचकों के साथ नृत्त की सृष्टि हुई, शिव पार्षद महामति तण्डु ने वाद्य यन्त्रों के साथ जिसकी संगति बैठा दी। अतः इस नृत्य का नाम ताण्डव पड़ा। ताण्डव में परिलक्षित क्रियाएँ– सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोभाव और अनुग्रह को प्रदर्शित करती हैं। जिनमें सहानुभूति, दक्षिणामूर्ति, अनुग्रहमूर्ति व नृत्यमूर्ति आदि शिव के प्रसिद्ध रूप है।

लास्य में मनोरम, अङ्गहार, मनोरम लय, ताल व कौशिकी वृत्ति पर आधारित होता है। इसके चार भेद माने गये है।

शारदातनय ने इन दोनों भेदों के अतिरिक्त गुण्डली व बृन्द भेद माने है। शारदातनय ने लास्य का कोई भेद नहीं माना है। परन्तु ताण्डव नृत्य के तीन भेद चण्ड, प्रचण्ड, उच्चण्ड माने गये है। गुण्डली नृत्य व नृत्त समूह में और भी अधिक चित्ताकर्षक होते है, अतः नृत्य का एक भेद बृन्द भी माना गया है। यह बृन्द नृत्य दो भेदों से संवलित है– बाह्य बृन्द एवं आभ्यन्तर बृन्द –

नाट्यं नृत्यञ्चवै बृन्दहीनं न शोभते।
अतो बृन्दं प्रकल्प स्यादित्याहुर्भरतादयः।।[14]

इन्हीं नृत्य भेदों के आधार पर आज अपने देश भारत वर्ष में विभिन्न शास्त्रीय व लोकनृत्य प्रचलित हुए है, जिन्हें हम मार्गी और देशी भी कहते है। उत्तर प्रदेश में बनारस, लखनऊ, राजस्थान के जयपुर घराने का कत्थक नृत्य असम का मणिपुरी नृत्य, उड़ीसा ओड़िसी नृत्य, तमिलनाडु का भरतनाट्यम् आन्ध्रप्रदेश का कुचिपुड़ी, केरल का कथकली नृत्य, मोहिनी– अट्टम, कुरियाट्टम जैसे शास्त्रीय नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। जिनमें आचार्य भरत द्वारा बनाए गए करण, अङ्गहार और मुद्राओं का उचित प्रयोग है। इनके अतिरिक्त विविध लोंकनृत्य जैसे– झाऊ, भवई, तमाशा, बिसुरतिया इत्यादि प्रचलित है। जो एक प्रकार से गुण्डली और बृन्द नामक नृत्य भेदों के अवान्तर भेद हैं।

नाट्य शास्त्र को चतुर्हस्त प्रमाण ग्रन्थ कहते है। इसके चार अंग सात्विक, आहार्य, वाचिक और आङ्गिक भेद माने गए है। आङ्गिक अभिनय में अंगहार करण और मुद्राओं का प्रयोग होता है। इन सबके माध्यम से नाट्य की प्रस्तुति को अत्यन्त प्रभावपूर्ण शैली में सहृदयों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सकता है।

आङ्गिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा।

ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकल्पितः।।[15]

अतः नाट्यशास्त्र (नट) नर्तकों के लिए एक अनुशासन प्रस्तुत करता है। और उसको बताता है कि– मनोभाव, वाणी, वेशभूषा और हावभाव को किस प्रकार से प्रस्तुत करें कि वह सहृदय ग्राह्य हो।

नाट्यशास्त्र में नाट्याभिनय के अन्तर्गत आङ्गिक अभिनय मुख, नेत्र अधर, हस्त, कटि, पाद, उर व पार्श्व के माध्यम से किया जाता है। नाट्यशास्त्र में षड्विध आङ्गिक अभिनय बताता गया है–

शिरोहस्तकटिवक्षः पार्श्वपादसमन्वितः।

अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तः षडङ्गो नाट्यसंग्रहः।।[16]

सिर, हाथ, कमर, वक्ष, पार्श्व और पैर यह छः अभिनय में प्रयुक्त होने वाले मुख्य अंग है। इनके अतिरिक्त छः उपाङ्गों का भी प्रयोग अभिनय (आशय) के स्पष्टीकरण में होता है, जिसका उल्लेख आचार्य भरत ने इस प्रकार किया है।

तस्य शिरोहस्तोरः पार्श्वकटिपादतः षडङ्गानि।

नेत्रभ्रूनासाधरकपोलचिवुकान्युपाङ्गानि।।[17]

नेत्र, भ्रू, नासिका अधर, कपोल, चिबुक ये छः उपाङ्ग भी आङ्गिक अभिनय में स्पष्ट होता हैं।
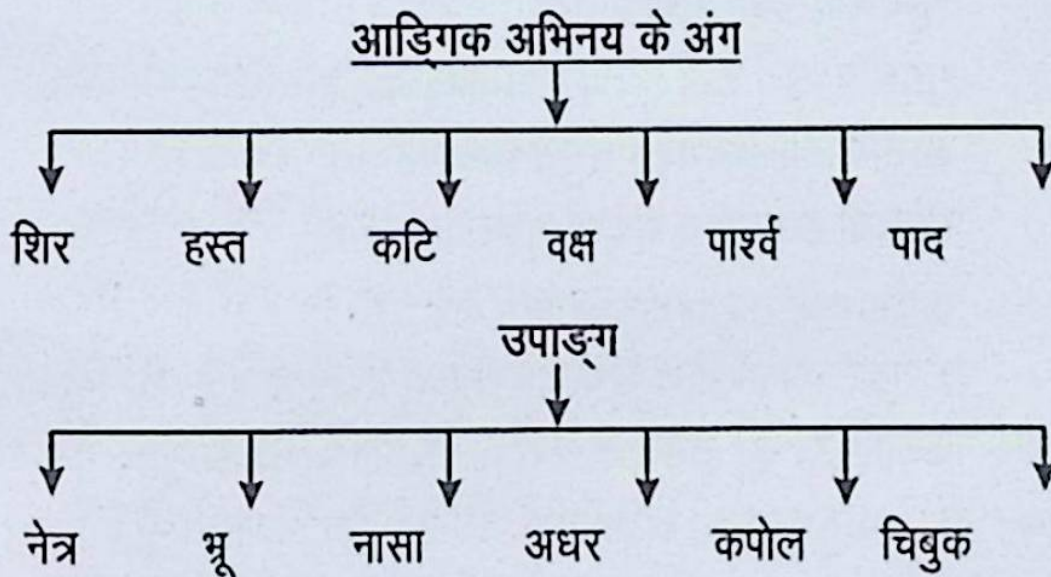
यही अंग प्रत्यंग नृत्य के अंकुर हैं तथा वस्तु अभिनय में प्रयुक्त होते है, यह आङ्गिक अभिनय अंगहार, करण मुद्राओं के आश्रय से उत्पन्न होता है। किन्तु नृत्त में करण की ही प्रमुखता रहती है। आङ्गिक अभिनय के मध्य हस्ताभिनय को मुख्य अंग में गिना गया है, जिनसे विविध मुद्राऐं बनाकर हम अपने आशय को सरलता से स्पष्ट कर देते है।

अतः नाट्यशास्त्र के नवम अध्याय में हाथ की विभिन्न चौंसठ मुद्राओं का वर्णन है। यह चौंसठ हस्त मुद्राएँ प्रयोग की दृष्टि से आचार्य भरत ने तीन भागों मे विभक्त कर दी है। प्रथम जिन मुद्राओं का निर्माण मात्र एक ही हाथ से किया जाता है वे असंयुत–हस्त मुद्राऐं कहलाती है– ये संख्या में चौबीस मानी गयी है। 1. पताका, 2. त्रिपताका, 3. कर्तरीमुख, 4. अर्धचन्द्र, 5. अराल, 6. शुकतुण्ड 7. मुष्टि, 8. शिखर, 9. कपित्थ, 10. खटकामुख, 11. सूची, 12. पद्मकोष 13. सर्पशीर्ष, 14. मृगशीर्ष, 15. लाङ्गल, 16. उत्पल, 17. पद्म, 18. चतुर 19. हंसास्य, 20. हंसपक्ष, 21. संदेश, 22. मुकुल, 23. ऊर्णनाभ, 24. ताम्रचूड मुद्रा।

पताकास्त्रिपताकश्च तथा वै कर्तरीमुखः।
अर्धचन्द्रो ह्यरालश्च शुकतुण्डतथैव च।।
मुष्टिश्च शिखराख्यश्च कपित्थः खटकामुखः।
सूच्यास्यः पद्मकोषश्च तथा वै सर्पशीर्षकः।।
मृगशीर्षः परो ज्ञेयो हस्ताभिनययोक्तृभि।
लाङ्गलोत्पलपद्मश्च चतुरी भ्रामरस्तथा।।
हंसास्यो हंसपक्षश्च संदेशो मुकुलस्तथा।
ऊर्णनाभस्ताम्रचूडश्चतुर्विंशदिमे कराः।।[18]

वह मुद्राऐं जिनमें दोनों हाथों का संयुक्त प्रयोग होता है, वह संयुक्त हस्त मुद्राएँ कहलाती है। यह संख्या में तेरह हैं। जिनमें अञ्जलि मुद्रा, कपोत मुद्रा कर्कट मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा, खटक मुद्रा, वर्धमान मुद्रा, उत्सङ्ग मुद्रा, निषध मुद्रा दोला मुद्रा, पुष्पपुट मुद्रा, मकर मुद्रा, गजदन्त मुद्रा और अवहित्थ मुद्रा है।

अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।
खटका वर्धमानश्च ह्युत्सङ्गो निषधस्तथा।।
दोलाः पुष्पपुटश्चैव तथा मकर एव च।
गजदन्तोऽवहित्थश्च वर्धमानस्तथैव च।।
एते तु संयुक्ता हस्ता मया प्रोक्तास्त्रयोदश।
नृत्त हस्तानतश्चोर्ध्व गदतो मे निवोधत।।[19]"

इस संयुक्त व असंयुक्त हस्त मुद्राओं के अतिरिक्त अन्य मुद्राएँ भी होती है। जैसे– स्वस्तिक मुद्रा, विप्रकीर्ण मुद्रा, अराल मुद्रा, खटकामुख मुद्रा, आविद्धक मुद्रा सूचीमुख मुद्रा, रेचित मुद्रा, अर्धरेचित मुद्रा, उत्तान मुद्रा, अवञ्चित मुद्रा, पल्लव मुद्रा नितम्ब मुद्रा, केशबन्ध मुद्रा, लता मुद्रा, करिहस्त मुद्रा, पक्षवञ्चित मुद्रा, पक्षप्रद्योतक मुद्रा, गरुडपक्ष मुद्रा, हंसपक्ष मुद्रा, उर्ध्वमण्डल मुद्रा, उरमण्डल मुद्रा, पार्श्वमण्डल मुद्रा उरपार्श्वमण्डल मुद्रा, मुष्टिका मुद्रा, स्वस्तिक मुद्रा, नलिनी मुद्रा, पद्मकोष मुद्रा अलपल्लव मुद्रा, ललित मुद्रा और बलित मुद्रा–

स्वस्तिकौ विप्रकीर्णौ चाप्यरालखटकामुखौ।
अविद्रकौ सूच्यास्य रेचितावर्धरेचितौ।।
उत्तानवचिञ्तौ चैव पल्लवौ च तथा करौ।
नितम्बावपि विज्ञेयौ केशबन्धौ तथैव च।
लताख्यौ च तथा प्रोक्तौ करिहस्तौ तथैव च।
पक्षवञ्चितकौ चैव पक्षप्रद्योतकौ तथा।
ज्ञेयौ गरुडपक्षौ च हंसपक्षौ तथैव च।।
ऊर्ध्वमण्डलिनौ चैव पार्श्वमण्डलिनौ तथा।
उरो मण्डलिनौ उरः पार्श्वेर्ध्वमण्डले।
मुष्टिकः स्वस्तिकश्चापि नलिनी पद्मकोषकौ।
अलपल्लवोल्बणौ च ललितौ वलितौ तथा।।
चतुःषष्टिकरा ह्येते नामतोऽभिहितो मया।
यथा लक्षमणमेतेषां कर्माणि च निबोधत।।[20]"

इस प्रकार आचार्य भरत ने चौंसठ हस्त मुद्राओं का उल्लेख किया है जिसमें चौवीस असयुक्त तेरह संयुक्त, सत्ताइस उभय मुद्राएँ है (24+13+27=64)

स्वस्तिक मुद्राः–

स्वस्तिक अलग–अलग करणों से करने पर यह मुद्रा फूल लाने उपहार देने में घास लाने में, कुछ वस्तु या बात छिपाने में, किसी वस्तु को प्रकट करने में, बालक या जीव का पालने में, किसी वस्तु, शाक, फल आदि को काटने में, किसी वस्तु व्यक्ति को ढ़कने या छिपाने में प्रयोग होनी चाहिए [21], वायु का आवेग दर्शाने में, लहरों के उठने गिरने के आवेग प्रकट करने में, सीमा बतलाने में, बेला बतलाने में, अन्तर के मनःक्षोभ को दर्शाने में, हाव–भाव के विक्षोभ दिखलाने में, उत्साह प्रदर्शन में, महाजन समूह प्रदर्शन में, किरणों के विकरण में, पुष्कर को दर्शाने में, पक्षियों के पंख फड़फड़ाने में इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। [22]

त्रिपताका हस्त मुद्राः–

जब पताका हस्त मुद्रा में अनामिका अंगुली झुका ली जाए तो वह त्रिपताका हस्त मुद्रा कहलाएगी–

अतः परं प्रवक्ष्यामि त्रिपताकस्य लक्षणम्।
पताके तु यदा वक्रानामिकातवाङ्गुलिर्भवेत्।। [23]

यह त्रिपताका हस्त आचार्य भरत के अनुसार बुलाने में (आवाहन), ऊँचाई से उतरने में, विसर्जित करने में, कार्य का समापन दिखाने में, किसी को किसी कार्य से रोकने में प्रयोग करना हो, किसी को कुछ निर्देश देना हो तथा विविध वचनों को प्रदर्शित करने में यह मुद्रा प्रयोग की जाती है।

आवाहनं अवतरणं विसर्जन वारणं प्रवेशश्च।
उन्नामनं प्रणामो निदर्शनं विविधवचनञ्च।। [24]

त्रिपताका मुद्रा का प्रयोग मांगलिक द्रव्य के स्पर्श में, मंगलाभूषण शिरोधार्य करने में कोई वस्तु पहनने में, लेने में, प्रयोग करने में इसे करना चाहिए। इसी मुद्रा के द्वारा पगड़ी पहनना, मुकुट धारण करना। नासिका में आभूषण पहनने में, मुख पर अंग राग आदि का प्रयोग करने में, कानों में आभूषण पहनने में प्रयोग करना चाहिए–

माङ्गल्य द्रव्याणां स्पर्शः शिरसोऽथ संनिवेशश्च।
उष्णीषमुकुटधारण नासास्य श्रोत्र संवरणम्।। [25]

यदि अनामिका अंगुली को नीचे करके उठाया जाए, इस प्रकार बार–बार किया जाए, तो वह स्वाभाविक तुच्छता को प्रकट करता है। यह त्रिपताका मुद्रा लघुमुख अर्थ में, वायु के स्रोत दर्शाने में प्रयोग की जाती है। यह ही भुजङ्ग की चाल में, भ्रमर आदि के उड़ने को दर्शाने में प्रयोग करना चाहिए।

अस्यैव चाङ्गुलीभ्यामधोमुखप्रस्थितोत्थित चलाभ्यां।

लघुमुख पवनस्रोतो भुजङ्ग भ्रमरादिका कुर्यात्।।[26]

इस मुद्रा का प्रयोग अश्रु प्राच्छलन में होता है। तिलक लगाना, विरोचन क्रिया नेत्रों में काजल रॉजना, कार्य की समाप्ति बताने के लिए त्रिपताका की अनामिका का स्पर्श दर्शाना चाहिए–

अश्रु प्रमार्जन तिलक विरोचन लोचनाजनंक च।

त्रिपताकानामिकया स्पर्शनमलिकस्य कर्तव्य ।।[27]

त्रिपताका और स्वस्तिक दोनों ही मुद्राओं का प्रयोग गुरुओं के चरणवन्दन में होता है। इन्हीं मुद्राओं का अलग–अलग करण से करने पर चलन अर्थ में, स्थिर अर्थ में और नृप दर्शन के अर्थ में प्रयोग किया जाता है–

स्वस्तिकौ त्रिपताकौ तु गुरुणां पादवन्दनम्।

विच्युतौ चलितावस्थौ कर्तव्यौ नृपदर्शने।।[28]

स्वस्तिक मुद्रा को तिर्यक बनाने पर वह ग्रहदर्शन की द्योतक होती है। इसी मुद्रा से यदि तपस्वी दर्शन दिखाना हो तो ऊपर पराङ्गमुख बनाना चाहिए–

तिर्यक्स्वस्तिक सम्बद्धौ स्यातां तौ नृपदर्शने।

तपस्विदर्शने कार्या चोर्ध्वौ चापि पराङ्गमुखौ।।[29]

यदि दो पताका मुद्राएं आमने–सामने की जाएं तो द्वार दर्शन में प्रयुक्त होगी। यदि एक पताका हस्त उठा हुआ और पताका अधोमुखी हो तो यह पृथ्वी स्थानीय वस्तुओं का निर्देश करेगी–

परस्पराभिमुखौ च कर्तव्य द्वारदर्शने।

उत्तानाधोमुखौ कार्यावग्रे च कुस्य संस्थितौ।।[30]

स्वस्तिक मुद्रा बडवाग्नि के प्रसार में, मकरादि के दर्शन में, बन्दर प्वगादि के अभिनय में प्रयुक्त की जाए। किसी के गिरने– के आशय में प्रयोग स्वस्तिक मुद्रा का ही होता है।

बडवानल संक्रामे मकराणां च दर्शने।

अभिनेयास्त्वनेनैव वानरप्लवनौर्मयः ।। [31]

त्रिपताका मुद्रा में यदि अंगूठे को फैलाया जाए तो वह उगते हुए चन्द्रमा के तुल्य आकृति में आ जाता है और इससे वालेन्दु का निर्माण नृत्य में किया जाता है। यदि त्रिपताका हस्त परस्पर पराङ्गमुख बनाये जाऐ तो यह यान (वाहन) को बतलाते हैं और उनके मानवीय प्रयोग में प्रयुक्त होते है–

तन्मुख प्रसृताङ्गुष्ठः कार्यो वालेन्दुदर्शने।

पराङ्गमुखस्तु कर्तव्यो याने नृणां प्रयोक्तृभिः।। [32]

कर्तरीमुख मुद्राः

जब त्रिपताका मुद्रा वाले हाथ का पिछला हिस्सा दिखाई देने लगे, तर्जनी व मध्यमा ऊपर उठे हो और अनामिका तथा कनिष्ठका अंगुष्ठ से दबे हों, तो उस मुद्रा को कर्तरीमुख मुद्रा कहते हैं :–

त्रिपताका यदा हस्ते भवेत्पृष्ठावलोकिनी।

तर्जनी मध्यमायाश्च तदासौ कर्तरीमुखः।। [33]

कर्तरीमुख द्वारा राहगीर (पथिक) को राह बताने के लिए, चरणों में अलाक्तक द्रव लगाने में, किसी वस्तु को रगड़ने में अथवा किसी वस्तु के नीचे रखने के अर्थ में, इसका प्रयोग नृत्यकला में किया जाता है। इस मुद्रा को यदि सिर के ऊपर दिखाया जाये तो यह सींग (श्रृंग) के आशय में और यदि घुमाते हुए दिखाएं तो आलेख में प्रयुक्त होता है।

पथिकचरणरचनरञ्जनरङ्गणकरणान्यधोमुखेनैव।

उर्ध्वमुखेन तु कुर्याद्दृष्टं श्रृंग च लेखं च ।। [34]

यदि किसी का गिरना दिखाना हो, किसी व्यक्ति की मृत्यु दिखानी हो, आवश्यक कार्यो में व्यवधान स्पष्ट करना हो तो कर्तरीमुख मुद्रा का ध्यान करना चाहिए। किसी व्यक्ति की भ्रमण की प्रवृत्ति को परिलक्षित करने में, वितर्क को प्रस्तुत करने में तथा अपने तर्क रखने में नृत्य में कर्तरीमुख मुद्रा का प्रयोग होता है–

पतनमरण व्यतिक्रम परिवृत्त वितर्कितं तथा न्यस्तम्।

भिन्नं बलितेन कुर्यात्कर्तयास्याङ्गुलीय युगलेन।। [35]

अर्धचन्द्र मुद्रा :-

जब अंगुलियाँ कुछ झुकी हुई और अंगूठा चाप के सदृश हो तो अर्धचन्द्र मुद्रा होगी। यह अर्धचन्द्र मुद्रा द्वितीया के चन्द्रमा के समान दिखाई देती है-

यस्याङ्गुल्यस्तु विनता सहाङ्गुष्ठेन चापवत्।
सोऽर्धचन्द्रं इति ख्यातः करः कर्मास्य वक्ष्यते।। [36]

इस मुद्रा से छोटे-छोटे वृक्षों को नृत्य में सम्प्रेषित करते हैं। इससे ही चन्द्रमा की कलाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। इस मुद्रा से कलश को, कंगन को दिखाते हैं। इसी मुद्रा से लोहे के घिसने की क्रिया को नृत्य में दिखाते हैं। किसी वस्तु को मध्यम आकार बताने के लिए अर्धचन्द्र मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। इसी मुद्रा से उपमाओं को दर्शाते हैं। इसी मुद्रा से शरीर की स्थूलता को भी दिखाते हैं।

एतेन बालतरवः शशिलेखाकम्बुकलशवलयानि।
निर्घाटनमायस्तं मध्यौपम्यं च पीनं च ।। [37]

अर्धचन्द्र मुद्रा से ही करधनी, जघन, कटि, आनन आदि को प्रदर्शित करते हैं। इसी के माध्यम से चित्रसंरचना को दिखाना, स्त्रियों की भाँति आचरण दिखाने में, योग आदि क्रियाओं को दिखाने में इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। यदि इसी मुद्रा में अंगूठे को संकुचित कर लिया जाय तो उससे धनुष तथा लता आदि का दर्शाया जाता है-

रसनाजघनकटिमाननातलपत्र कुण्डलादीनां।
कर्तव्यो नारीणामभिनय योगोऽर्धचन्द्रेण।।
आद्या धनुर्लता कार्या कुञ्चिताङ्गुष्ठस्तथा। [39]

अराल मुद्रा :-

समस्त अंगुलियों को फैलाकर तर्जनी व अंगुष्ठ का वलय बनाते हैं। तो वह अराल मुद्रा कहलाती है -

शेषो भिन्नोर्ध्ववलिता ह्यरालेऽङ्गुलयः करे। [39]

अराल मुद्रा द्वारा सत्व (शक्ति प्रदर्शन) में, पाँसों के खेल को दिखलाने में, किसी विषम परिस्थिति में धैर्य धारण करने में, शारीरिक कान्ति को दर्शान में, किसी वस्तु की, देवता की दिव्यता को दर्शाने में, गम्भीरता बताने में तथा आशीर्वाद बताने में या उसी जैसे भावों को दिखाने में अराल मुद्रा का ही प्रयोग किया जाता है-

एतेन सत्त्व शौण्डीर्यधृतिकान्ति दिव्य गाम्भीर्यम्।

आशीर्वादश्च तथा भावाहित संज्ञकाः कार्याः।। [40]

स्त्रियों के केश विन्यास को प्रदर्शित करने के लिए अराल मुद्रा का प्रयोग करते है। इस मुद्रा से व्यक्ति का उत्कर्ष भी दिखाते हैं और सम्पूर्ण अंगों का वर्णन भी करते है। यदि स्वयं को बताना हो तो अराल मुद्रा का प्रयोग करते है।

एतेन पुनः स्त्रीणां केशनं संग्रहस्तथोत्कर्षः।

सर्वाङ्गिकं तथैव च निर्वर्णनमात्मनः कार्यम्।। [41]

यदि आश्चर्यचकित है तो आश्चर्य प्रदर्शन को दर्शाने में प्रयोग किया जाता है। अगर विवाह को प्रदर्शित करना है तो भी अराल मुद्रा से दिखाते हैं। संयोग की दशा दिखाने में, देवों की परिक्रमा करने या गुरुजन परिक्रमा में तथा नवीन प्रयोगों को बताने और शत्रु समूह को आख्यायित करने में इसका प्रयोग किया जाएगा–

कौतुकविवाहयोगं प्रदक्षिणे नैव संप्रयोगं च।

अंगुल्यग्रस्वस्तिक योगात्मारिमण्डलेर्नैव।। [42]

अराल मुद्रा से अत्यधिक उदारता को प्रदर्शित करने के लिए हाथों को कुछ कुछ घुमाते हैं। यदि जन समूह को इंगित करना हो तो भी इसे विपरीत करण में घुमाते हुए अराल मुद्रा से प्रदर्शित करेंगे। किसी वस्तु को पृथ्वी स्थानीय बताने के लिए और द्रव्य रखने के अर्थ में भी यह मुद्रा प्रयुक्त होती है–

प्रादक्षिण्यं परिमण्डलं च कुर्यान्महाजनं चैव।

यच्च महीतलनिहितं द्रव्यं तच्चाभिनेयं स्यात्।। [43]

किसी व्यक्ति को निकट बुलाने के लिए, अग्नि इत्यादि के प्रसार को बुझाने के लिए, किसी व्यक्ति विशेष की निन्दा करने में आरोप लगाने इत्यादि में और अनेक बातों को एक साथ पूछनें के सन्दर्भ में अराल मुद्रा प्रयुक्त होती है। इसी के परिश्रमजन्य स्वेद बिन्दुओं को पौंछने में, सुगन्धि की महक, सूँघने में, शुभकर्मो के प्रदर्शन में अराल मुद्रा का प्रयोग किया जाता है–

आवाहने निवापे निंदाक्षेपाव्यनेक वचने च।

स्वेदस्य चापनयने गन्धघ्राणे शुभे चैव।। [44]

तथा जो कर्म त्रिपताका मुद्रा के हैं जैसे– बुलाना, उतरना, विर्सजन, प्रवेश यशप्रसार, मांगलिक द्रव्यालंकरण, लघुता, वायुस्रोत, भुजंङग प्रचलन, भ्रमर गति, अश्रु प्रच्छालन, विरेचन, कालज, तिलक लगाना, कार्य की समाप्ति गुरु चरणवन्दन आदि समस्त कार्य इस मुद्रा से भी प्रदर्शित किए जा सकते है। इस मुद्रा से शीघ्रता तथा स्त्रीजनों को भी दर्शाया जाता है–

त्रिपताक हस्तजानि तु पूर्व यान्यभिहितानिकर्माणि।
तानि त्वरानुयोगात् स्त्रीभिः सम्यक् प्रयोज्यानि।। [45]

शुकतुण्ड मुद्राः–

अब अराल मुद्रा में ही अनामिका को आगे झुका लें तो शुकतुण्ड मुद्रा बनती है–

अरालस्य यदा वक्रानामिका त्वङ्गलिर्भवेत्।
शुकतुण्ड् सुस कर कर्म चास्य निबोधत्।। [46]

यह शुकतुण्ड मुद्रा स्वयं तथा अन्य किसी के न होने की स्थिति को प्रदर्शित करती है। किसी कार्य को न करना हो तो भी इसी का प्रयोग होता है। यही मुद्रा प्रयोजन बतलाने में, आवाहन करने में, यही विश्व के प्रलयावस्था को भी प्रदर्शित करती है। यदि धिक्कार दिखाना है, तो भी अरालमुद्रा बनेगी। और अवज्ञा में भी इसका ही प्रयोग होता है–

एतेन त्वभिनेयं नाहं न त्वं न कृत्यमिति चार्थे।
आवाहने विसर्गे धिगिति वर्धने च सावज्ञम् ।। [47]

मुष्टि मुद्राः–

जब अॅगुलियों को हस्ततल के मध्य में रखकर उसके ऊपर अंगूठा रख देने से मुट्ठी मुद्रा रूप में नाट्यशास्त्र में वर्णित है–

अंगुल्यो यस्य हस्तस्य तलमध्ये उग्रसंस्थिताः।
तासामुपरि चाङ्गुष्ठः स मुष्टिरिति संज्ञितः।। [48]

इस मुष्टि मुद्रा का प्रयोग मारने में, विविध शारीरिक व्यायामों को दर्शाने में, भीड़भाड़ से निकलने में, हाथ को दबाने में, गुरुजनों के चरण दबाने के अर्थ में तलवार लाठी आदि पकड़ने में, भाला, डण्डा आदि पकड़ने में तथा इन्हें भॉजने में इसी मुद्रा का प्रयोग होता है।

एष प्रहारे व्यायामे निर्गमे हस्तपीड़ने।
संवाहनेऽसियष्टीनां कुन्तदण्डग्रहे तथा।। [49]

शिखर मुद्रा :–

यदि मुष्टि मुद्रा में अंगूठा ऊपर की और उठा लिया जाय तो वह शिखर मुद्रा कहलाएगी। इस मुद्रा का प्रयोग इसी रूप में होगा–

अस्यैव तु यदा मुष्टेरूर्ध्वोऽङ्गुष्ठः प्रयुज्यते।
हस्तः स शिखरो नाम तथा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः।। [50]

शिखर मुद्रा का प्रयोग अश्व की लगाम पकड़ने में, कुशों का एकत्र करने व लाने के अर्थ में, धनुष पकड़ने में, तोमर, शक्ति आदि शस्त्रों को पकड़ने व प्रयोग करने में किया जाता है। इसी मुद्रा से अधर रंजन, पैरों पर अलाक्त द्रव लगाने में, केशों को बिखेरने में प्रयोग करना चाहिए–

रश्मिकुशाङ्कुशधनुषां तोमरशक्ति प्रमोक्षणं चैव।
अधरोष्ठ पादरञ्जनमलकस्योत्क्षेपणं चैव।। [51]

कपित्थ मुद्रा :–

शिखर मुद्रा में उठे अंगूठे के अग्र भाग को जब तर्जनी को टेढ़ा करके दबाते हैं तब कपित्थ मुद्रा बनती है–

अस्यैव शिखराख्यस्य मुखेऽङ्गुष्ठ निपीडितः।
यदा प्रदेशिनी वक्रा स कपित्थस्तदा स्मृतः।। [52]

तलवार, धनुष, चक्र, तोमर, भाला, गदा, शक्ति, वज्र, बाण आदि शस्त्रास्त्रों को अभिनीत करने में उन सबके प्रयोगों को दर्शाने में इस मुद्रा का प्रयोग होता है। यह मुद्रा सत्य स्थिति के स्पष्टीकरण में रोगी के पथ्य को दर्शाने में भी प्रयुक्त होती है–

असिचापचक्रतोमरकुन्तगदाशक्तिवज्रबाणानि।
शस्त्राण्यभिनेयानि तु कार्यं सत्यं च पथ्यं च ।।[53]

खटकामुख मुद्रा :–

कपित्थक मुद्रा में जब अनामिका और कनिष्ठका अंगुली टेड़ी करके ऊपर उठा ली तो उसे खटका मुख मुद्रा कहते है–

उत्क्षिप्तवक्रा तु यदानामिका सकनीयसी।
अस्यैव तु कपित्थस्य तदासौ खटकामुखः।। [54]

इस मुद्रा का प्रयोग हवन करने में, हविष्य का प्रयोग करने में, छत्र को ग्रहण करने में, किसी वस्तु को खींचने में, गर्मी में पंखा झलने की क्रिया में शीशा पकड़ने में, वस्त्र अलंकार धारण करने में, आदर्शवादी व्यक्ति को बताने में, आदर्शों के खण्डन तथा मण्डन में तथा अनाज इत्यादि पीसने में प्रयोग की जाती हैं–

होत्रं हव्यं छत्रं प्रगृह परिकर्षणं च व्यञ्जनकम्।
आदर्श धारणं खण्डनं तथा पेषणं चैव ।। [55]

खटकामुख मुद्रा द्वारा माला पहनना, वस्त्र धारण करना, कार्य की समाप्ति दिखाने में, आलम्बन के बतलाने में, दधि मथने में, बाण आदि खींचने में, पुष्पों के चयन में, वाद्य यन्त्रों के वादन में इसी क्रिया का प्रयोग किया जाता है। आयात दर्शाने में, दण्ड ग्रहण करने में, मोती आदि पिरोने में मोती उठाने में, हाथी आदि पर अंकुश लगाने में, रस्सी से वस्तु खींचने के अभिनय में, स्त्री आदि को देखने में इस मुद्रा का प्रयोग होना चाहिए–

आयातदण्डग्रहणं मुक्ताप्रलम्ब संग्रहं चैव।
स्रग्दामधारणं खलु वस्त्रान्तालम्बनं चैव।
मन्थानशराकर्षण पुष्पावचय प्रतोदकार्याणि।
अंकुशरज्ज्वाकर्ष स्त्रीदर्शनमेव कार्य च।। [56]

सूचीमुख मुद्रा–

जब खटकामुख मुद्रा में तर्जनी को फैला दिया जाए तो प्रयोगकर्ता इसे सूचीमुख मुद्रा के नाम से जानते है–

खटकाख्ये यदा हस्ते तर्जनी संप्रसारिता।
हस्तः सूचीमुखे नाम तदा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः।। [57]

इस मुद्रा के विभिन्न प्रयोगों को संक्षेप में आचार्य भरत ने बताया है। जब तर्जनी को ऊपर नीचे किया जाय और कम्पाया जाए तो जम्भाई लेने में, वस्त्रालंकार धारण करने में प्रयोग किया जाता है–

अस्या विविधान्योगान्वक्ष्यामि समासतः प्रदेशिन्याः।
ऊर्ध्वनततलोलकम्पितविजृम्भितोद्वाहित चलायाः।। [59]

इस मुद्रा का चक्र धारण करने में, मेघ समूह में बिजली गर्जन में, वृक्षों पर नवीन मञ्जरी को प्राकट्य दर्शाने में, कर्ण चूलिका आदि में प्रयोग करना चाहिए। इसी मुद्रा से टेढ़ी मेढ़ी चाल दर्शाने में, सभी प्रकार के दिशा निर्देश में तथा साधुवाद देने में इसका प्रयोग करना चाहिए–

चक्रं तडित्पताकामञ्जर्यः कर्णचूलिकाश्चैव।
कुटिलगतयश्च सर्वे निर्देश्याः साधुवादश्च।। [60]

छोटे– छोटे सर्प के अर्थ में, नए पत्ते बताने के लिए, सूर्य के प्रकाश को निर्देशित करने में, दीप दिखलाने में, लता बल्लरी आदि को दिखाने में, मोरों को दिखाने में, गिरने में, तिरछे मण्डल को दर्शानें में इस मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए–

बालोरग पल्लवधूप्रदीपवल्लीलताशिखण्डाश्च।
परिपतन वक्रमण्डलमभिनेयान्यूर्ध्वलोलितया।। [61]

सूचीमुख मुद्रा को बार–बार ऊपर करने पर तारामण्डल को दर्शाते हैं, इससे नासिका को, दण्ड और लाठी को बताने के लिए, डाल इत्यादि को झुकाने पर दन्ति आदि के प्रयोग में इसी मुद्रा को बनाते है–

भूयश्चोर्ध्वविरचिता तारा घौणैकदण्डयष्टिषु च।
विनता च तथा कार्या दंष्ट्रिषु तथास्य योगेन।। [62]

सूचीमुख मुद्रा से बारम्बार मण्डल बनाने पर ग्रहण की स्थिति को स्पष्ट करते है और संसार को बतायेगी। यदि सूचीमुख मुद्रा में तर्जनी झुका दी जाए तो कार्य पर ध्यान देने में अर्थ को (प्रयोजन को) और दिवस को बताती है–

पुनरपिमण्डलगतयः सर्वग्रहणं तथैव लोकस्य।
प्रणतीकृता च कार्याध्यायेदर्थे च दिवसे च ।। [63]

मुख आदि को बताने में, बार–बार अभ्यास में, संकुचन में, जम्हाई लेने में वाक्य पूरा करने में, सुनने के सतत अभ्यास में, वस्तु पदार्थ की वक्रता बताने में विजृम्भण में, वाक्य कथन में और कार्य करने में, वस्तुओं को फैलाने में, तर्जनी को हिलाते हुए दिखलाना चाहिए–

वदनाभ्यासे कुञ्चित विजृम्भिता वाक्यरूपेण कार्या।
श्रवणाभ्यासे वक्रा विजृम्भो वाक्यरूपेण च मुखे।।
सेति वदति च योज्या प्रसारितोत्कम्पितोत्ताना।[64]

क्रोध के प्रदर्शन में, कम्पन करते हुए दिखाने में, पसीना आदि पोंछने में, केशों को निर्देशित करने में, कुण्डल और अंगदादि आभूषणों को दर्शाने तथा पहनने में, माथे आदि का आशय लेने में इस सूचीमुख मुद्रा का प्रयोग करते हैं–

कार्या प्रकम्पिता रोष दर्शने स्वेदमार्जने चैव।
कुन्तलककुण्डलाङ्गदागण्डाश्रय संश्रयेऽभिनये।।[65]

गर्वानुभव में, अंहकार के आशय में, ललाट, शत्रु के निर्देश में और क्रोध में सूचीमुख मुद्रा का प्रयोग होता है। यह कौन है इस अर्थ में सूचीमुख मुद्रा बनानी चाहिए निर्देश देने में, कान खुजलाने में इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है।

गर्वेऽहमिति ललाटे रिपुनिर्देशे तथैव च क्रोधे।
कोऽसाविति निर्देशेऽथ कर्णकण्डूयने चैव ।।[66]

यदि दोनों तर्जनी मुद्राओं की संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाए तो वह संयोग की दिशा को बताती है और अलग–अलग करने पर वियोगी दिशा को बताती है। लड़ाई स्वस्तिक युक्त तर्जनी परस्पर पीड़ा पहुँचाने में बन्धयुक्त दिखानी चाहिए–

संयुक्ता संयोगे कार्य विश्लेषिता वियोगेन च।
कलहे स्वस्तिकयुक्ता परस्परोत्पीडित[illegible]न्धे।।[67]

यदि दोनों तर्जनीवाम पार्श्व पर स्थिर की जाएं तो दक्षिण आदि दिशा निर्देश में दिन को बताने में, रात्रि आदि अवसान में, साम्मुख्य में, पराङ्गमुख में, अलग–अलग होने में, इस मुद्रा का प्रयोग होता है–

द्वाभ्यां तु वामपार्श्वे दक्षिणतो दिन निशावसानादि।
अभिमुखे पराङ्गमुखाभ्यां विश्लिष्टाभ्यां प्रयुञ्जीता।।[68]

यदि सूची मुख मुद्रा के अग्रभाग को मुख पर घुमाया जाए, तो यह सौन्दर्य को दर्शाती है। इससे चट्टान, आवर्त्त, पर्वत आदि दिखाए जाते हैं– यह छिपाने में तथा अधोमुख वस्तु बताने में प्रयुक्त होती है।

पुनरपि च भ्रमिताग्रा रूपशिलावर्तयच्चशैलेषु।
परिवेषणे तथैव हि कार्या चाधोमुखी नित्या।।[69]

आपस में तर्जनी जोड़ने पर ललाटपट्ट को, अधोमुखी मुद्रा द्वारा शिव के रूप को और उठाने में यह इन्द्र के उत्थान में तिरछा करके बनाएं–

श्लिष्टा ललाटपट्टेष्वधोमुखी शम्भुरूपेण।
शक्रस्याभ्युत्थानत्तज्ज्ञैस्तिर्यक्स्थिता कार्या।।[70]

दोनों अंगुलियों से नित्य प्रति की स्थिति दर्शायी जाती है। सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल को श्लिष्ट सूचीमुख से दर्शाते हैं, इससे माथे पर तिलक लगाने, इन्द्र के कार्यो को तिरछा करके ऊपर करने पर स्पष्टतम समझ में आएगा–

द्वाभ्यां प्रदर्शयेन्नित्यं सम्पूर्णं चन्द्रमण्डलम्।
श्लिष्टा ललाटे शक्रस्य कार्या ह्युत्तानसंश्रया।।[71]

चतुर्दिक मण्डल बनाकर घुमाने में मण्डल को दिखाते हैं और पूर्ण चन्द्रमा को बताते हैं। शिव के तीसरे नेत्र को माथे पर और इन्द्र के कार्यो को तिरछा हाथ ऊपर करने पर प्रकट करते है–

परिमण्डल भ्रमितया मण्डलयोर्दर्शयेच्च चन्द्रस्य।
हरनयने च ललाटे शक्रस्य तिर्यगुत्ताना।।[72]

पद्मकोष मुद्रा :

जब अंगुलियों को अलग–अलग फैली हुई अवस्था में संकुचित किया जाए व अंगूठे को वैसा ही कर लेने पर, ऊपर की और अग्रभाग अलग–अलग करने के पद्मकोष मुद्रा बनती है–

यस्याङ्गल्यस्तु विरलाः सहाङ्गुष्ठेन कुञ्चिताः।
ऊर्ध्वा संगताग्राश्च स भवेत्पद्मकोषकः।।[73]

पद्मकोष मुद्रा से श्रीफल (बिल्व) को दिखाते हैं। कपित्थ तथा अन्यान्य दूसरे फलों के लपकने की क्रिया को इस मुद्रा द्वारा ही दिखाया जाता है। इस मुद्रा द्वारा नृत्यादि में स्त्री कुच मर्दन की, आमिष भक्षण को, धन लाभ की स्थिति को दिखलाते हैं। धन लाभ की स्थिति में अग्रभाग की अंगुलिओं का संकुचन बढ़ जाता है–

बिल्वकपित्थफलानां ग्रहणं कुचदर्शनं च नारीणां।
ग्रहणे ह्यामिष लाभे भवन्ति ताः कुञ्चिताग्रास्तु।।[74]

पद्मकोष मुद्रा से ही देव पूजन को, बलि आदि देने में जलाञ्जलि आदि प्रदान करने में, पिण्डदान देने में कार्य करना दिखलाना हो, पुष्पों के विकसन को पद्मकोष मुद्रा से प्रकट करतें हैं–

देवार्चन बलिहरणे समुद्गके साग्रपिण्डदाने च।
कार्याः पुष्पप्रकटश्च पद्मकोषेन हस्तेन ।। [75]

इस मुद्रा में जब मुट्ठी से धीरे–धीरे खुलती हुई चलायमान अंगुलियों द्वारा कार्य की समाप्ति की ओर अग्रसर होने की तथा कमलादि पुष्पों के विकसन की क्रिया को प्रदर्शित किया जाता है–

मणिबन्धश्लिष्टाभ्यां प्रविरलचलिताङ्गुलीययुतकराभ्यां।
कार्यो प्रवर्तिताभ्यां विकसित कमलोत्पलाभिनयः।। [76]

सर्वशिरा मुद्राः

इस मुद्रा में सभी अंगुलियों को इकट्ठा कर अंगूठे सहित जब नीचे तल की ओर की जाए वह सर्वशिरा मुद्रा है। यह पद्मकोष मुद्रा के ठीक विपरीत दिशा में बनेगी।

अङ्गुल्यः संहता सर्वाः सहाङ्गुष्ठेन यस्य च।
तथा निम्नतलश्चैव स तु सर्वशिराःकरः।। [77]

यह मुद्रा पौधों मे सिञ्चन में, पितरों की जलाञ्जलि दान में प्रयोग की जाती है। यह आस्फोटन में, सिंह आदि योद्धाओं द्वारा हाथी के गण्डस्थल के विदीर्णन में इसका प्रयोग होता है–

एष सलिल प्रदाने भुजगगतौ तोयसेचने चैव।
आस्फोटने च योज्याः करिकुम्भास्फालनाद्येषु।। [78]

मृगशीर्ष मुद्राः

जब तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को झुका लिया जाए और अंगूठे व कनिष्ठका को खड़ा रखा जाय तो मृगशीर्ष मुद्रा बनेगी–

अधोमुखीनां सर्वाषामङ्गुलीनां संमागमः।
कनिष्ठकाङ्गुष्ठकावूर्ध्वौ सभवेन्मृगशीर्षकः।। [79]

यह मुद्रा यहाँ, साम्प्रत, अद्य आदि अर्थो में प्रयुक्त होगी। लालन पालन तथा अक्षों के फेंकने में, स्वेद के प्रच्छालन में तथा कुङ्डमित में यह मुद्रा प्रयुक्त होगी–

इह साम्प्रतमस्त्यद्य शक्यश्चेल्लानेऽक्षपाते च।
स्वेदापमार्जनेषु च कुङ्डमिते प्रचलितेषु तु भवेत्।। [80]

त्रेतादि की स्थापना में मध्यमा तर्जनी अनामिका को टेढ़ा कर कनिष्ठका ऊपर करें और अंगूठे की तर्जनी पर रखें तो यह गणना प्रसंग में प्रयुक्त होगा–

त्रेताद्विसंस्थिता मध्या तर्जन्यङ्गुष्ठका यदा।
अङ्गुलेऽनामिका वक्रा तथा चोर्ध्वकनीयसी।। [81]

इस मुद्रा से तरुण अवस्था के बालकों को, विभिन्न फलों को, तुच्छ कार्यो को, रोष को, स्त्री वचन को एवं आक्षेप को निरुपित करते हैः–

एतेन तरुणफलरुपाणि नानाविधानि च लघूनि।
कार्याणि रोषजानि स्त्रीवचनान्यङ्गुलिक्षेपैः।। [82]

मरकत, वैदूर्य, हीरा इत्यादि रत्नों को दर्शाने में, रत्नों को पकड़ने में तथा अन्य वस्तुओं में, बिल्ली इत्यादि पशुओं को पद चिन्हों के निरुपण में इस मुद्रा का प्रयोग किया जाता है–

मरकतवैडूर्यादीनां निदर्शनं कार्याम्।
ग्राह्य विडालपदमिति चैव प्रयोगेषु।। [83]

अलपल्लव मुद्राः

हथेलियों को घुमाते हुए जब पार्श्व में आकर अंगुलियों को फैलाया जाए तो वह अलपल्लव मुद्रा है।

आवर्तिन्यं करतले यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि।
पार्श्वगतविकीर्णाश्च स भवेदलपल्लवः।। [84]

इसका प्रयोग निषेध करने पर, किसी वस्तु को जोड़ने पर अथवा तुम कौन हो, वचन शून्य स्थिति को दर्शाने में और अपने को उपन्यस्त करने में यह मुद्रा प्रयुक्त होती है।

प्रतिषेधेकृते योज्याः कस्त्वं नास्ति शून्यवचनेषु।
पुनरात्मोपन्यासः स्त्रीणामेतेन कर्तव्यः।।[85]

चतुर हस्त मुद्राः

तीन अङ्गुलियों को फैलाकर तथा कनिष्ठा को ऊपर करके बीच में अंगूठा करने पर चतुर नामक मुद्रा बनती है।

तिस्र प्रसारिता यंत्र तथा चोर्ध्वाकनीयसी।
तासां मध्ये स्थितोऽङ्गुष्ठः स करश्चतुरः स्मृतः।।[86]

इस मुद्रा का प्रयोग नीति में, विनय में, निपुणता दर्शाने में, बचपना दर्शाने में, आतुरता प्रकट करने में, शक्ति प्रदर्शन में, व्यक्ति की चालाकी प्रकट करने में, वाक्य प्रयोग बताने में, मरीज द्वारा पथ्य सेवन में सबसे पहले इसी मुद्रा का प्रयोग होता है–

नयेविनयनियमनिपुणबालातुरसत्त्वकैतवार्थेषु।
वाक्ये युक्ते पथ्ये सत्ये प्रथमे च विनियोज्यः।।[87]

एक हाथ अथवा दोनों हाथों से जब मण्डल निर्माण करने पर द्वार खोलने का, रोकने का, निर्माण करने का और तर्क– वितर्क करने पर और लज्जा में इसका प्रयोग करना चाहिए।

एकेन द्वाभ्यां वा किञ्चन मण्डलकृतेन हस्तेन।
विवृत विवारितरचित वितर्कितं लज्जितं चैव ।।[88]

नेत्रों की उपमा किसी भी वस्तु से करने में, पद्म दल को स्पष्ट करने में, हिरण के कान दिखाने में, संयुक्त करण वाली चतुर मुद्रा का प्रयोग करना चाहिए–

नयनौपम्यं पद्मदलरूपेणं हरिणकर्णनिर्देशम्।
संयुक्तकरेणैव चतुरेणैतानि कुर्वीत।।[89]

लीला दिखाने में, रति में, रूचि प्रकट होने पर, स्मृति में, बुद्धिमत्ता दिखाने में, विभावना में क्षमा, पुष्टि, संज्ञा, दिशा–बोध, प्रणय, विचार, संगत शौच आदि में इसका प्रयोग करना चाहिए–

लीलां रतिं रूचिं स्मृतिं बुद्धिं विभावनाः क्षमा पुष्टिं (च)
संज्ञामाशां प्रणयं विचारणं संगतं शौचम्।।[90]

चतुराई, मधुरता, दाक्षिण्य, मार्दव, वेष संरचना, शील, प्रश्न पूछने में, वार्ता, युक्ति, सुख, मृदुशाद्वल तथा अल्पता में इस मुद्रा का प्रयोग किया जाए।

चातुर्य माधुर्य दाक्षिण्यं मार्दवं सुखं शीलम्।
प्रश्नं वार्तायुक्तिं वेषं मृदुशार्द्वलं स्तोकम्।।[90]

ऐश्वर्य, अनैश्वर्य, सुरत, गुण, अवगुण, स्त्रियों के यौवन, विविध वर्णों को स्पष्ट करने में चतुर मुद्रा का ही प्रयोग करना चाहिए–

विभवाविभवौ सुरत गुणागुणौ यौवनं दारान्।
नानावर्णाश्च तथा चतुरेणैवं प्रयुज्जीत।।[91]

वस्तु पदार्थ की धवलिता बताने के लिए, सिर के बराबर पर चतुर हस्त मुद्रा बनाएं। लाल पीले आदि रंगों को बताने में चतुर हस्त को मण्डल में घुमाते हैं तथा मूर्धा पर रगड़ने से नीले व लाल रंग को दर्शाते हैं–

सितमूर्ध्वेन तु कुर्याद्रक्तं पीतं च मण्डलकृते च।
परिमृदितेन तु नीलं वर्णांश्चतुरेण हस्तेन।। [92]

भ्रमर मुद्रा:

मध्यमा तथा तर्जनी को टेढ़ा कर अंगुष्ठ के ऊपर रखें तथा शेष दो अंगुलियों को फैलाएं तो भ्रमर मुद्रा निर्माण होगा–

मध्यमाङ्गुष्ठ संदेंशो वक्रा चैव प्रदेशिनी।
ऊर्ध्वमन्ये प्रकीर्णे च अङ्गुल्यो भ्रमरे।। [93]

पद्म, उत्पल, कुमुद तथा अन्यान्य दीर्घ वृन्त पुष्पों को ग्रहण करने में कर्णपूर की भाँति धारण करने में इस मुद्रा का प्रयोग होता है–

पद्मोत्पल कुमुदानामन्येषां चैव दीर्घवृत्तानां।
पुष्पाणां ग्रहणविधिः कर्तव्य कर्णपूरश्च।। [94]

गिरने में, शब्द के प्रयोग होने में, भर्त्सनादि में, बालकों के वार्तालाप में भ्रमर मुद्रा का प्रयोग होगा। यह मुद्रा शीघ्रता, ताल, विश्वास आदि में भी प्रयुक्त होती है–

विच्युतश्च सशब्दश्च कार्यो निर्भर्त्सनादिषु।
बालालापे च शीघ्रे च ताले विश्वासने तथा।।[95]

हंसास्य मुद्रा :

तर्जनी मध्यमा अंगूठे से सतत जुड़ी हुई और अनामिका व कनिष्ठका फैली हुई हो तो हंसास्य मुद्रा का निर्माण होता है।

तर्जनी मध्यमाङ्गुष्ठास्त्रेताग्निस्था निरन्तराः।।
भवेयुर्हंसवक्रस्य शेष द्वे संप्रसारितेः।। [96]

सुलक्षणों के आख्यान में, अल्पता, शैथिल्य, लाघव, निस्सारता, मृदुल के योग में, कार्याभिनय में तथा पानी, दूध, शहद आदि के टपकने को दर्शाने में हंसास्य मुद्रा का प्रयोग होता–

श्लक्ष्णाल्पशिथिललाघव निःसारार्था मृदुत्वयोगे च।
कार्योभिनयविशेषः किंचित्प्रस्यन्दिताग्रेण।। [97]

हंसपक्ष मुद्रा :

तर्जनी मध्यमा अनामिका को झुकाकर अंगूठे पर रखने तथा कनिष्ठका को ऊपर उठाने से हंसपक्ष नामक मुद्रा बन जाएगी–

समाः प्रसारितास्रिस्तस्तथा चोर्ध्वा कनीयसी।
अंगुष्ठः कुञ्चितश्चैव हंसपक्ष इति स्मृतः।। [98]

हंसपक्ष मुद्रा जल ग्रहण करने, जल प्रदान करने, गन्धादि को सूँघने, किसी दीवार, पेड़ आदि का आश्रय लेने में, कार्य के प्रतिग्रहण में तथा अवमानान में और ब्राह्मणों को भोजनादि क्रिया दर्शाने में प्रयुक्त होती है–

एष च निवापसलिले दातव्ये गन्ध संश्रये चैव।
कार्यः प्रतिग्रहावमानभोजनार्थेषु विप्राणाम्।। [99]

हंसपक्ष मुद्रा आलिंगन, अत्यधिक स्तब्धता में, रोमहर्षण में, रोमांच, स्पर्श करने में, शरीर में विविध द्रव्यों को लेप करने में, शरीर दबाने में इस मुद्रा का प्रयोग होता है–

आलिङ्गने महास्तम्भनिदर्शने रोमहर्षण चैव।
स्पर्शेऽनुलेपनार्थे योज्यः संवाहने चैव ।। [100]

स्त्रियों के स्तन के मध्य का अन्तर बताने में, विभ्रम दिखाने में, जिस कार्य में जैसी आनन्दानुभूति है, दुःख के अनुभव में, हनु बताने में इस मुद्रा का प्रयोग होता है–

पुनरेव च नारीणां स्तनान्तरस्थेन विभ्रमाविशेषाः।
कार्या यथा रसाः स्युर्दुःखे हनुधारणे चैव।।[101]

सन्दंश मुद्राः

तर्जनी अंगूठे से सन्दंश मुद्रा का निर्माण होता है। जैसी अराल मुद्रा होती है वैसी ही अभुग्नतल तथा मध्य वाली सन्दंश मुद्रा बनती है–

तर्जन्यङ्गुष्ठ सन्दंशो ह्यरालस्य यथा भवेत्।
आभुग्नतलमध्यश्च स सन्दशं इति स्मृतः।। [102]

अग्रज सन्दंश, मुखजसन्दंश तथा पार्श्वगत सन्दंश भेद से युक्त यह तीन अन्तरों वाली मुद्रा विविध रस भावों को बताने में प्रयुक्त होती है–

सन्दंशस्त्रिविधो ज्ञेयेस्त्वग्रजो मुखजस्तथा।
तयापार्श्वगतश्चैव रसभावोपवृंहितः।। [103]

इस मुद्रा का प्रयोग पुष्प चयन में, धागे आदि पकड़ने में, किसी वस्तु को ग्रहण करने में, कॉटे आदि निकालने में, केशों को पकड़ने में प्रयोग की जाती है–

पुष्पावचयग्रथने ग्रहणे तृणपर्णकेशसूत्राणां।
शल्याकर्षग्रहणापकर्षणे चाग्रसन्दंशः ।। [104]

वृत्त से फूलों को अलग करने में, वर्तिका के आशय में, शलाका आदि को बताने में, किसी को धिक्कारने में, वाक्यों को बोलने में, क्रोधपूर्ण मुख को बताने के लिए सन्दंश मुद्रा का प्रयोग होता है–

वृन्तात्पुष्पोद्धरणं वर्तिशलाकादिपूरणं चैव।
धिगिति च वचनं रोषान्मुख सन्दंशस्य कर्माणि।। [105]

इस सन्दंश मुद्रा से यज्ञोपवीत धारण करने में, कर्ण भेदन में, गुणों में सूक्ष्मता दिखाने में, बाण से लक्ष्य भेदने में, योग का आसनादि दर्शाने में, ध्यान में, किंचित संयुक्त हस्त वाली सन्दंश मुद्रा बनानी चाहिए–

यज्ञोपवीतधारणं वेधनं गुणसूक्ष्मवाण लक्ष्येषु।
योगे ध्याने स्तोके संयुक्तकरस्तु कर्तव्यः।। [106]

यह मुद्रा पेलव अर्थ में, कुत्सित अर्थ में, असूया, दोषों को ग्रहण करने में वचन बोलने में, वाम हस्त से मुद्रा बनाते हुए किञ्चत परिवर्तित अग्रभाग वाली पार्श्वस्थ सन्दंश मुद्रा बनानी चाहिए–

पेलव कुत्सासूयासदोष वचने च वामहस्तेन।
किंचिद्विवर्तिताग्रः प्रयुज्यते पार्श्व सन्दंशः।। [107]

चित्र संरचना, नेत्र में अञ्जन डालने में, तर्क वितर्क में, प्रवाल रचना में, वस्त्रादि को निचोड़ने में, दर्शाने में, आलता लगाने में इस मुद्रा का प्रयोग होन लगा है–

आलेख्य नेत्र रञ्जन वितर्कवृन्तप्रवालरचनं च।
निष्पीडनं तथालक्तकस्य कार्य च नारीभिः।। [108]

मुकुल मुद्राः

समस्त अंगुली व अंगूठे जिसमें समान रूप से आगे कर ली जाएं और ऊपर की ओर यह स्थिति की जाए तो वह मुकुल मुद्रा होगी–

समानताग्राः सहिता यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि।
ऊर्ध्वा हंसमुखस्यैव स भवेन्मुकुलकः करः।। [109]

यह हस्त मुद्रा देव पूजन में, बलि प्रदान करने में, पद्मोत्पलादि की कलिका संदर्शन में, रूपसौन्दर्य बताने में, विट आदि के चुम्बन को दर्शाने मे और कुत्सित कार्य फैलाने में इस मुद्रा का प्रयोग होता है–

देवार्चन बलिकरणे पद्मोत्पल मुकुलरूपणे चैव।
विटचुम्बने च कार्यो विकुत्सिते विप्रकीर्णे च ।। [110]

इस मुद्रा से भोजन क्रिया, स्वर्ण मुद्रा का गिनना, मुख कुम्हलाना, लेन देन, शीघ्रता एवं मुकुलित पुष्प प्रदर्शित किया जाता है–

भोजनहिरण्यगणनां मुखसंकोच प्रदानशीघ्रेषु।
मुकुलित कुसुमेषु तथा तज्ज्ञैरेष प्रयोक्तम्।। [111]

ऊर्णनाभ मुद्राः

पद्मकोष हस्तमुद्रा की अंगुलियों के जब ऊपरी भाग को संकुचित कर लिया जाए, तो वह ऊर्णनाभ मुद्रा बन जाती है। यह मुद्र केश, ग्रहण

करने, चोर द्वारा चोरी को बताने आदि में प्रयुक्त होती है।

पद्मकोषस्य हस्तस्य ह्यङ्गुल्यः कुञ्चिता यदा।
ऊर्णनाभः स विज्ञेयः केशचौर्यग्रहादिषु।। [112]

ऊर्णनाभ मुद्रा द्वारा सिर खुजलाना, कुष्ठ रोग पीड़ित व्यक्ति को बताना, सिंह व व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं का निरूपण, पत्थर आदि पकड़ने में प्रयोग होता है।

शिरः कण्डूयने चैव कुष्ठव्याधिनिरूपणे।
सिंहव्याघ्रेष्वभिनयः प्रस्तरग्रहणे तथा।। [113]

कंगुल (ताम्रचूड) मुद्राः

जब मध्यमा संदंश मुद्रा के अनुरूप वक्र कर अंगुष्ठ पर रख ली जाए तथा प्रदेशिनी भी कुछ टेढ़ी कर ली जाए तब शेष अंगुलियाँ तलगत हों तो वह कराङ्गुल (ताम्रचुड) मुद्रा कहलाएगी।

मध्यमाङ्गुष्ठ सन्दंशो वक्रा चैव प्रदेशिनी।
शेषे तलस्थे कर्तव्ये ताम्रचूड कराङ्गुलीः।। [114]

यह हस्त मुद्रा किसी वस्तु से अलग होने की दशा को, शब्द होने पर स्थिति को, निर्भत्सना को प्रदर्शित करती है–

विच्युतश्च सशब्दश्च कार्यो निर्भत्सनादिषु।
तालेष्विष्वसिते चैव शीघ्रार्थे संज्ञितेषु च ।। [115]

यह मुद्रा कलाओं के निदर्शन में, लकड़ी आदि बनाने में, निमिष, क्षण पल आदि समय के अंश दर्शाने में, स्त्रियों के परस्पर वार्तालाप में, निमन्त्रण में प्रयोग की जाती है–

तथा कलासु काष्ठासु निमेषे तु क्षणे तथा।
एष एव करः कार्योऽबलालाप निमन्त्रणे।। [116]

ताम्रचूड़ मुद्राः

अंगुलियों को तिरछा करके ऊपर से अंगूठे को दबाने तथा कनिष्ठका को फैलाने पर ताम्रचूड़ मुद्रा बन जाएगी।

अङ्गुल्यः संयुता वक्रा उपर्यङ्गुष्ठपीडिताः।
प्रसारिता कनिष्ठा च ताम्रचूडः करः स्मृताः।। [117]

इस मुद्रा से शत सहस्त्र लक्ष आदि बताया जाता है। शीघ्रता से अंगुलियों के खोलने पर स्फुङ्लिग अर्थ में प्रयुक्त होती है।

शतं सहस्त्रं लक्षं करेणैकेन दर्शयेत्।
क्षिप्रमुक्ताङ्गुेलीभिस्तु स्फुलिङ्गान्विप्रुषस्तथा।। [118]

इस प्रकार आचार्य भरतमुनि ने असंयुत हस्त मुद्राओं का निरूपण किया है। तत्पश्चात् उन्होंने संयुत हस्त मुद्राओं को दर्शाया है

अञ्जलि मुद्राः

यह संयुत कर मुद्रा है। जब दो पताका हस्त मुद्राएं आपस में जोड़ ली जाएं तो अञ्जलि मुद्रा का निर्माण होता है। यह देवताओं, गुरुओं व मित्रों के अभिवादन में प्रयुक्त होती है–

पताकाभ्यां तु हस्ताभ्यां संश्लेषादञ्जलिः स्मृतः।
देवतानां च गुरुणां च मित्राणां चाभिवादने ।। [119]

जब देवताओं का पूजन करते समय उन्हें प्रणाम निवेदन करना हो तो इस मुद्रा को सिर पर बनाएं, जब गुरुओं को प्रणाम करना हो तो मुख पर बनाएं एवं जब मित्रों का अभिवादन करना हो तो वृक्ष पर बनाएं

देवतानां शिरःस्थस्तु गुरुणामास्यसंस्थितः।
वक्षःस्थयचैव मित्राणां शेषेत्वनियमो भवेत्।। [120]

कपोत मुद्राः

यह भी संयुक्त कर मुद्रा है। जब दोनों हाथों के पार्श्व मिले हुये तथा मध्य भाग में दूरी बना ली जाए तो कपोत मुद्रा का निर्माण होगा–

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामन्योन्यं पार्श्वसंग्रहात्।
हस्तकपोतको नाम कर्म चास्य निबोधतः।। [121]

यह हस्त मुद्रा अभिनय को दर्शाने, आगम को बताने में प्रयुक्त होती है। इससे गुरुओं को प्रणाम निवेदन भी किया जा सकता है। इससे गुरुओं से वार्तालाप भी प्रकट किया जाता है। शीतादि ऋतुओं के प्रदर्शन, भय आदि में वक्ष पर रखकर उनकी स्थिति को दर्शाते हैं।

एषोऽभिनयाभिगमे प्रणाम करणे गुरोश्च संभाषे।
शीते भये च कार्यो वक्षःस्थः कम्पित स्त्रीभिः।। [122]

इस मुद्रा में ही अङ्गुलियों के परस्पर घर्षण से वाक्यजनित खिन्नता को प्रकट करते है। इसी भाँति इस मुद्रा से कार्यों के विभागों को भी दर्शाते हैं–

अयमेवाङ्गुलि परिघृष्यमाणयुक्तस्तु खिन्नवाक्येषु।
एतावादिति च कार्यो भेदाङ्गीकृत्यमिति चार्थे।। [123]

कर्कट मुद्राः

यह संयुत हस्त मुद्रा है। जब अंगुलियों हाथों में परस्पर एक दूसरे से गुँथी जाएँ और उनके आर पार अग्र भाग हों तो वह कर्कट मुद्रा बन जाती है।

अंगुल्यो यस्य हस्तस्य ह्यन्यान्योत्तर निःसृताः।
स कर्कट इति ज्ञेयः करः कर्म च वक्ष्यते ।। [124]

यह मुद्रा रति प्रसंग में, अंगो के मर्दन में, सोकर उठने में, जम्भाई लेने में, अंगड़ाई लेने में, वस्त्रादि धारण करने में, शंख पकड़ने में प्रयुक्त होती है–

एष मदनाङ्ग मर्दे सुप्तोत्थित जृम्भणे वृहद्देहे।
अनुधारणे च योज्यः शंख ग्रहणेऽथ तत्त्वज्ञैः।। [125]

स्वस्तिक मुद्राः

मणिबन्ध पर जुड़ी हुई दो अराल मुद्राएं बनाई जाएं, स्त्रियों द्वारा वामपार्श्व पर ऊपर उठा कर स्वस्तिक मुद्रा बनायी जाती है–

मणिबन्धन विन्यस्तावरालौ स्त्रीप्रयोजितौ।
उत्तानौ वामपार्श्वस्थौ, स्वस्तिकः परिकीर्तिताः।। [126]

यह स्वस्तिक मुद्रा अलग–अलग करण द्वारा किए जाने पर दिशा बोध को बताती है। यह मेघ, आकाश, वन, समुद्र, ऋतुओं के परिवर्तन पृथ्वी के विस्तार एवं अन्य वस्तुओं के विस्तार को दिखाने में प्रयोग की जाती है–

स्वस्तिक विच्युतिकरणाद् दिशो घनाः खं वनं समुद्राश्च।
ऋतवो महि तथान्यद् विस्तीर्णं चाभिनेयं स्यात्।। [127]

कटक मुद्रा:

कटक मुद्रा कटक धारण करने में, कटक वर्धमानक में, श्रृंगार में और करण के प्रयोग सहित प्रणाम के अर्थ में यह प्रयुक्त होती है। यह संयुत कर हस्त है–

कटक: कटकैर्न्यस्त: कटको वर्धमानक:।
श्रृंगारार्थेषु प्रयोक्तव्य: प्रणामकटको तथा।। [128]

उत्संग मुद्रा:

अराल मुद्रा को अलग अलग हाथों से करने पर वर्धमानक रूप में ऊपर करने पर उत्सङ्ग मुद्रा बनती है। इसे संयुत हस्त मुद्रा में किया जाता है। इससे कार्यो को सिंहावलोकन करते है–

अरालौ तु विपर्यस्तावुत्तानौ वर्धमानकौ।
उत्सङ्ग इति विज्ञेय: कार्य: सिंहावलोकिते।। [129]

संनिपेषकर में, रोष में, अमर्ष में, निष्पीडन करने के अर्थ में, स्त्रियों की परस्पर ईर्ष्या के अर्थ में इसका प्रयोग होता है–

संनिपेषकरश्चैव रोषेऽमर्षेऽपि च स्मृता।
निष्पीडित: पुनश्चैव स्रीणामीर्ष्याकृतो भवेत्।। [130]

यदि बायें हाथ से ग्रहण करने में, कूर्परा के अन्दर भुजा डालने में, दक्षिण अथवा वाम हस्त को कूर्परा के अन्दर करने में इसका प्रयोग किया जाएगा–

गृहीत्वा वामहस्तेन कूर्पराभ्यन्तरे भुजम्।
दक्षिणे चापि वामस्य कूर्पराभ्यन्तरन्यसेत्।। [131]

निषध मुद्रा:

यह भी संयुत हस्त मुद्रा है। दाहिने एवं बायें हाथ से भलीभाँति मुष्टि बनाकर एक दूसरे कोहनी के ऊपर रखी जाए तो वह निषध मुद्रा होती है–

स चापि दक्षिणो हस्त: सम्यङ्मुष्टीकृतो भवेत्।
इत्येष निषधो हस्त: कर्म चास्य निबोधत।। [132]

यह मुद्रा अंहकार प्रदर्शन में, गर्व बताने में, सौष्ठव, उत्सुकता, पराक्रम, आक्षेप अभिमान, अवष्टम्भ, स्तम्भ, स्थिरता आदि कार्यो में प्रयोग होती है–

एतेन मदगर्वसौष्ठवौत्सुक्य विक्रमाटोपाः।
अभिमानावष्टम्भः स्तम्भस्थैर्यागादियः कार्याः।। [133]

निषध मुद्रा का निर्माण दो प्रकार से होता है, पहला जो वर्णित है, दूसरी मुद्रा में हंसपक्ष मुद्रा को पराङ्मुख करके बनायी जाती है। वह निषध नामक मुद्रा है। खिड़की, झरोखे आदि अभिघट्टन में यह मुद्रा प्रयुक्त होती है।

ज्ञेयो वै निषधो नाम हंस पक्षौ पराङ्मुखौ।
जालवातायनादीनां प्रयोक्त्याभिघट्टने।। [134]

दोला मुद्राः

कन्धों को ढीला छोड़ते हुए जब स्वतन्त्र पताका हस्तों को लटकने दिया जाए। तो यह दोला नामक मुद्रा है। यह भी संयुत कर मुद्रा है। जिसमें करणें का प्रयोग होता है–

अंसौ प्रशिथिलौ मुक्तौ पताकौ तु प्रलम्बितौ।
यदा भवेतां करेण स दोला इति संज्ञितः।। [135]

यह मुद्रा सम्भ्रम दर्शाने में, विषाद में, मूर्च्छा में, अंहकार में, मदाभिघात में आवेग में, व्याधि की वृद्धि में, शस्त्रों से घायल होने पर इस मुद्रा का प्रयोग होता है–

सम्भ्रमविषादमूर्च्छितमदाभिघाते तथैव चावेगे।
व्याधिप्लुते च शस्त्रक्षते च कार्योऽभिनय योगः।। [136]

पुष्पपुट मुद्राः

असंयुत हस्त में जो सर्पशीर्षक मुद्रा बताई गई है, उसमें निरन्तर अंगुलियों को पार्श्व से जोड़ने पर पुष्पपुट मुद्रा बनती है–

यस्तु सर्पशिराः प्रोक्तस्तस्याङ्गुलि निरन्तरः।
द्वितीय पार्श्व संश्लिष्टः स तु पुष्पपुटः स्मृतः।। [137]

यह मुद्रा धन धान्य के प्रदर्शन में, फल, पुष्प आदि की समानता दर्शाने में विविध कार्यों के प्रयोग में, जल लाना दर्शाने में प्रयोग की जाती है–

धान्यफलपुष्पसदृशान्यनेन नानाविधानि युक्तानि।
ग्राह्याण्युपनेयानि च तोयानयनापनयने च ।। [138]

मकर मुद्राः

जब पताका हस्त मुद्राओं को ऊपर नीचे मुख करके एक के ऊपर दूसरे को रखते हैं तो वह मकर मुद्रा कहलाती है। यह भी संयुत कर मुद्रा है–

पताकौ तु यदा हस्तादूर्ध्वाङ्गुष्ठावधोमुखैः।
उपर्युपरि विन्यस्तौ तदा स मकरः करः।। [139]

मकर मुद्रा में सिंह, सर्प, द्वीप, नक्र, मकर और मांसभक्षी जन्तुओं का प्रदर्शन किया जाता है–

सिंहव्यालद्वीपप्रदर्शनं नक्रमकरमत्स्यानाम्।
ये चात्ये क्रव्यादा अभिनेयास्तेऽर्थयोगेन।। [140]

गजदन्त मुद्राः

कर्पूराश के संयुक्त हस्त जब सर्पशीर्षक मुद्रा में परिवर्तित होते है। तब गजदन्त मुद्रा का निर्माण होता है। यह भी संयुत कर मुद्रा है। जिसके कार्यो का निरूपण आचार्य भरत ने किया है–

कूर्परासंचितौ हस्तौ यदारतां सर्पशीर्षकौ।
गजदन्तः स तु करः कर्म चास्य निबोधत।। [141]

यह मुद्रा वधू वर के विवाह के आशय में, अत्यधिक भार वहन करने के अर्थ में, स्तम्भादि पकड़ने में, चट्टान, पर्वत आदि के उखाड़ने में बनानी चाहिए–

एष च वधूवराणामुद्वाहे चातिभारयोगेन।
स्तम्भग्रहणे च तथा शैल शिलोत्पाटने चैव।। [142]

अवहित्थ मुद्राः

जब दोनों हाथों से शुकतुण्ड मुद्रा बनाकर उन्हें वक्ष के सम्मुख संकुचित किया जाए तथा अंगुलियों को अधोमुखी रखा जाए तो अवहित्थ मुद्रा का निर्माण होता है। यह भी संयुत कर मुद्रा है।

शुकतुण्डौ करौ कृत्वा वक्षस्याभिमुखञ्चितौ।
शनैरधोमुखाविद्धौ सोऽवहित्थ इति स्मृतः।। [143]

इस मुद्रा से शारीरिक कृशता, दुर्बलता, प्रश्वॉस प्रक्रिया, शरीर का प्रदर्शन, उत्कण्ठा आदि प्रदर्शित करते है–

दौर्बल्ये निःश्वसिते गात्राणां दर्शने तनुत्वे च।
उत्कण्ठिते तज्ज्ञैरभिनययोगश्च कर्तव्य।। [144]

वर्धमानक मुद्राः

जब मुकुल हस्त मुद्रा को कपित्थक मुद्रा से आच्छादित कर लिया जाए तो वह वर्धमानक मुद्रा होती है–

मुकुलस्तु यदा हस्तः कपित्थ परिवेष्टिता।
वर्धमानः स विज्ञेयः कर्म चास्य निबोधत।। [145]

यह मुद्रा धनादि के संग्रहण में, परिग्रहण, धारण करने योग वस्तु को बताने में, समय ज्ञान में, सत्यवचन में, अत्यधिक पीड़ा में तथा वचन व वस्तु की संक्षिप्तता में प्रयुक्त होती है–

संग्रह परिग्रहौ धारणं च समयश्च सत्यवचनं।
संक्षेपास्तु संक्षिप्त विपीडिते नाभिनेतव्यम्।। [146]

वर्धमान मुद्राः

हंसपक्ष मुद्रा को विपरीत रूप में बनाने पर वर्धमान मुद्रा का प्रयोग बन जाता है। इस मुद्रा द्वारा जाल, झरोखे, खिड़की, इत्यादि का प्रदर्शन और उन्हें खोलने आदि की क्रिया प्रदर्शित की जाती है–

ज्ञेयौ वै वर्धमानस्तु हंसपक्षौ पराङ्मुखौ।
जालवातायनादीनां प्रयोक्तव्यौ विघटने।। [147]

इस प्रकार संयुत हस्त मुद्राओं का संक्षेप में निरूपण नाट्यशास्त्र में है। इन मुद्राओं के अतिरिक्त नृत्य नाट्यादि में अन्यान्य व्यवहारों को प्रकट करने के लिए अन्य मुद्राएं भी हैं।

नाट्य नृत्य तथा नृत्त में त्रिविध मुद्रा विधान प्रचलित है। उत्तान पार्श्वस्थ एवं अधोमुखी जो विविध अर्थो का आख्यायन कर देते है।

प्राङ्मुख, खटकामुख मुद्रा, समान एवं कूर्पराश यह चार प्रकार की ऊर्ध्वगा मुद्राएं कहीं जाती है। इनमें वक्ष पर अंगुलियों को सामने रखते हुए नृत्य व अभिनय किया जाता है

वक्षसेऽष्टाङ्गुलस्थौ तु प्राङ्मुखौ खटकामुखौ।
समानकूर्परांसौ तु चतरस्रौ प्रकीर्तिता।। [148]

तालवृन्तक मुद्राः

जब हंसपक्ष मुद्रा को शनैः– शनैः खोलते हैं तो वह तालवृन्त के सामन बन जाती है। इसे उद्धतकरण में करना चाहिए। यह तालवृन्तक मुद्रा है–

हंसपक्षकृतौ हस्तौ व्यावृत्तौ तालवृन्तवत्।
उद्धत्ताविति विज्ञेयावथवा तालवृन्तकौ।। [149]

बोधक मुद्राः

जब चतुरस्र तथा हंसपक्ष मुद्राओं को तिरछा बनाते हुये आमने–सामने तलाभिमुख किया जाता है, तो वह बोधक मुद्रा कहलाती है–

चतरस्रस्थितौ हस्तौ हंसपक्षकृतौ तथा।
तिर्यक्स्थितौ चाभिमुखौ ज्ञेयो तलामुखाविति।। [150]

स्वस्तिक मुद्राः

इसी प्रकार मणिबन्ध पर जुड़ी हुए हंसपक्ष मुद्रा बनाने पर स्वस्तिक मुद्रा का निर्माण होता है। यह मुद्रा अलग होने तथा वस्तु के विस्तार के अर्थ में प्रयुक्त होती है–

तावेव मणिबन्धन्ते स्वस्तिकाकृति संस्थितौ।
स्वस्तिकाविति विख्यातौ विच्युतौ विप्रकीर्णकौ।। [151]

अलपल्लव और अरालखटका मुद्राः

जब पद्मकोष मुद्रा ऊर्ध्वमुखी बनाई जाती तो वह अलपल्लव कहलाती है। अराल खटकामुख मुद्रा का निर्माण दो प्रकार से होता है– 1. अराल व खटकामुख मुद्राएं अलग–अलग हाथों से एक साथ बनाई जाएं। 2. इन दोनों मुद्राओं को दाएं व बाएं हाथ से बनाकर उन्हें मणिबन्ध पर जोड़ लिया जाए तो भी यह अराल खटकामुख मुद्रा कही जाएगी–

अलपल्लव संस्थानावूर्ध्वास्यौ पद्मकोषकौ।
अराल खटकाख्यौ वाप्यरालखटकामुखौ।
तथैव मणिबन्धान्ते ह्यराल विच्युतावुभौ।
ज्ञेयो प्रयोक्तृभिर्नित्यमरालखटकाविति।। [152]

आविद्धवक्र मुद्रा:

कंधो को कूर्परांस मुद्रा से कुछ कुटिलता प्रदर्शित करते हुए पकड़ने पर और फिर पराङ्मुख से आविद्ध करने पर आविद्धवक्र नामक मुद्रा का निर्माण होगा–

भुजांसकूर्पराग्रैस्तु कुटिलावर्तितो करौ।
पराङ्मुखस्तयाविद्धौ ज्ञेयावाद्धिवक्रकौ।। [153]

सूचीमुख मुद्रा:

जब सर्पशीर्षक मुद्रा के मध्य में अंगुष्ठ को तिरछे फैलाया जाए, तो वह सूचीमुख मुद्रा कहलाती है–

हस्तौ तु सर्पशिरसौ मध्यस्थाङ्गुष्ठकौ यदा।
तिर्यक्प्रसारितास्यौ च तथा सूचीमुखौ स्मृतौ।। [154]

सूचीमुख स्वस्तिक मुद्रा:

जब सर्पशीर्षक मुद्रा को स्वस्तिक में बनाए जाए (मणिबन्ध पर जोड़ कर) व मध्य मे अंगूठे को फैला दिया जाए तो सूचीमुख स्वस्तिक का निर्माण होगा–

सर्पशीर्षौ यदा हस्तौ भवेतां स्वस्तिकस्थितौ।
मध्यप्रसारिताङ्गुष्ठौ ज्ञेयो सूचीमुखौ तदा।। [155]

रेचित एवं रेचितसंस्थान मुद्रा:

हंसपक्ष मुद्रा को जब विलास व विभ्रम के साथ किया जाए तो वह रेचित मुद्रा कहलाती है, और जब इसी मुद्रा में हाथों को ऊपर की तल करके फैलाते हुए किया जाए तो वह रेचितसंस्थान मुद्रा है–

रेचितौ चापि विज्ञेयौ हंसपक्षोद्धत भ्रमौ।
प्रसारितोत्तानतलौ रेचिताविति संज्ञितौ।। [156]

अर्धरेचित मुद्रा:

चतुस्र मुद्रा को जब वाम पार्श्व पर हस्त रूप में किया जाए, तो वह रेचित नाट्याचार्यो में अर्धरेचित के नाम से जाना जाता है–

चतुरस्रो भवेद्वाम: सव्यहस्तश्च रेचित:।
विज्ञेया नृत्ततत्वज्ञैरर्धरेचितसंज्ञिको।। [157]

उत्तानवंचित मुद्राः

कुछ कञ्चित कूर्परांस अथवा त्रिपताका करों को संकुचित कर कुछ तिरछा करने पर उन्हें उत्तानवञ्चित मुद्रा कहा जाता है–

अञ्चितौ कूर्परांसौ तु त्रिपताकाकृतो करौ।
किंचित्तिर्यग्गतावेतौ स्मृतावुत्तान वञ्चितौ।। [159]

नितम्ब मुद्रा और पल्लव हस्त मुद्रा :

बाहू शीर्ष पर निकलने हुये हाथ नितम्ब मुद्रा कहलाते हैं और मणिबन्ध पर खुले हाथ पल्लव कहे जाते हैं–

मणिबन्धमुक्तौ तु पताकौ पल्लवौ स्मृतौ।
बाहुशीर्षाद्विनिष्क्रान्तौ नितम्बाविति कीर्तितौ।। [159]

केशबन्ध मुद्राः

केश प्रदेश से निकलते हुए, पार्श्व में स्थित कर केशबन्ध नामक मुद्रा को बनाते है–

केशदेशाद्विनिष्क्रान्तौपि पार्श्वस्थितौ तथा।
विज्ञेयौ केशबन्धाख्यौ तु करावाचार्यसम्मतौ।। [160]

लता मुद्राः

हाथों को तिरछा फैलाने के अनन्तर पार्श्व में स्थित करने को नृत्याचार्य लता मुद्रा कहते है–

तिर्यक्प्रसारितौ चैव पार्श्वसंस्थौ तथैव च।
लताख्यौ च करौ ज्ञेयो नृत्ताभिनयनं प्रति।। [161]

करिहस्त मुद्राः

जब लता हस्त को ऊपर उठाकर पार्श्व घुमाते हुये त्रिपताका बनाई जाए तो वह करण करिहस्त मुद्रा है–

समुन्नतो लताहस्तः पार्श्वत्पार्श्व विलोलितः।
त्रिपताकोऽपरः कर्णे करिहस्तः प्रकीर्तितः।। [162]

पक्षवंचित मुद्राः

जब दोनों हाथ कटि शीर्ष पर त्रिपताका की अवस्था में रखी जाएं तो उन्हें पक्षवञ्चित मुद्रा कहते हैं–

कटिशीर्ष निविष्टौ द्वौ त्रिपताकौ यदा करौ।
पक्षवञ्चितकौ हस्तौ तदा ज्ञेयौ प्रयोक्तृभिः।। [163]

पक्षप्रद्योतक और गरुड़ पक्ष मुद्राः

उसी प्रकार घूमने पर पक्ष प्रद्योतक नाम की मुद्रा बनती है जिस पक्षवञ्चित का करतल अधोमुखी हो, वह गरुड़ पक्ष मुद्रा कहलाएगा–

तावेव तु परावृतौ पक्ष प्रद्योतकौ स्मृतौ।
अधोमुखतलाविद्धौ ज्ञेयो गरुडपक्षकौ।। [164]

दण्डपक्ष मुद्राः

हंसपक्ष मुद्रा के हाथों को उल्टा घुमाने पर फिर शनैः शनैः भुजा फैला देने पर दण्डपक्ष मुद्रा बन जाएगी–

हंसपक्षकृतौ हस्तौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ।
तथा प्रसारितभुजौ दण्डपक्षाविति स्मृतौ। [165]

ऊर्ध्वमण्डल पार्श्वमण्डल मुद्राः

जब भुजाओं को ऊपर की ओर घुमाते हैं तो ऊर्ध्वमण्डल मुद्रा का निर्माण होता है और इस प्रकार घुमाते हुए भुजाओं को पार्श्व में कर लेने पर पार्श्व मण्डल मुद्रा बन जाती है–

ऊर्ध्व मण्डलिनौ हस्तावूर्ध्वदेश विवर्तनात्।
तावेव पार्श्वविन्यस्तौ पार्श्वमण्डलिन्या स्मृतौ।। [166]

उरमण्डल मुद्राः

जब एक हाथ उद्वेषित तथा दूसरा चापवत् स्थिति में वक्ष के सामने घुमाया जाए तो वह उरमण्डल मुद्रा कहलाएगी–

उद्वेष्टितो भवेदेको द्वितीयश्चापवेष्टितः।
भ्रमितावुरसः स्थाने ह्युरोमण्डलिनौ स्मृतौ।। [167]

उरपार्श्वमण्डल मुद्रा:

अराल हस्त मुद्राओं को वक्ष पर आधा घुमा फिर पार्श्व घुमाया जाए तो उरपार्श्व मण्डल मुद्रा बन जाएगी–

अलपल्लव करावुरोऽर्धभ्रमणक्रमात्।
पार्श्ववर्तश्च विज्ञेयावुरः पार्श्वर्धमण्डलौ।। [168]

मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा:

मणिबन्ध की सीमा को कुछ संकुचित कर शनैः शनैः फैलाएं व खटकामुख आकृति बनाने पर मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा का निर्माण होता है–

हस्तौ तु मणिबन्धान्ते कुञ्चितावञ्चितौ यदा।
खटकाख्याकृतौ स्यातां मुष्टिकस्वस्तिकौ तदा।। [169]

नलिनी पद्मकोष मुद्रा:

पद्मकोष हस्त मुद्रा को खोला व बन्द किया जाए, तो वह नलिनी पद्मकोष मुद्रा कहलाएगी।

पद्मकोषौ यदा हस्तौ व्यावृत्त परिवर्तितौ।
नलिनी पद्मकोषौ तु तदा ज्ञेयो प्रयोक्तृभिः।। [170]

उल्बण मुद्रा:

हाथों को आगे फैलाकर दौड़ते हुए अल्पल्लव हस्त मुद्रा बनाकर ऊपर फैलाया जाए तो उसे उल्बण हस्त मुद्रा कहेंगे–

करावुद्वेष्टिताग्रौ तु प्रविधायापल्लवौ।
ऊर्ध्व प्रसारिताविद्धौ विज्ञेयावुल्बणावपि।। [171]

वलित व ललित हस्त मुद्राएं :

जब एक हाथ से दूसरे को घेरे, पुनः उद्वेष्टित करें, फिर खोलकर बन्द करें तदनन्तर परिवर्तन करें तो वह वलित मुद्रा है–

अथावेष्टितमेकं स्यादुद्वेष्टिमथापरम्।
व्यावर्तितं तृतीयं तु चतुर्थ परिवर्तितम्।। [172]

पल्लव मुद्रा जब सिर पर बनाई जाए तो साम्प्रतिक अर्थ में हो तो ललित मुद्रा होगी अथवा कूर्परांस स्वस्तिक और लता मुद्रा के मिलन पर ललित मुद्रा बनेगी –

पल्लवौ च शिरोदेशे सम्प्राप्तौ ललितौ स्मृतौ।
कूर्परस्वस्तिक गतौ लताख्यौ ललिताविति।। [173]

इस प्रकार से नाट्य शास्त्र में उभय मुद्राओं का वर्णन है।

आकृति, चेष्टा, चिह्न, जाति आदि का स्पष्टीकरण इन मुद्राओं से होता है। स्वयं का तर्क वितर्क भी इन मुद्राओं से दिखाया जाता है। मुद्रा, लय, ताल छन्द, सब एक दूसरे की अवस्था में संयुक्त हो जाते हैं। लौकिक मुद्राएं भी छन्द लय, ताल के साथ रसोत्पत्ति का साधन बन जाती है। यह मुद्राएं, देशकाल के अनुरूप रूप परिवर्तित कर लेती है। यथा– आजकल कर्तरीमुख मुद्रा में तर्जनी व मध्यमा स्वतंत्र रहते हैं शेष दोनों अंगुलियाँ अंगूठे के नीचे रहती हैं। मुद्राओं में पुरुष व स्त्री हस्त लोकाचार के अनुरूप दाएं व बांए हाथ से बनाए जाते है। ऊपर वर्णित हस्त मुद्राओं के उत्कर्षक, विकर्षण, व्याकर्षण, परिग्रहण, आवाहन ताडन, तर्जन, संश्लेष, वियोग, रक्षा, मोक्ष, विक्षेप, उड़ान, विसर्ग, तर्जन छेदन में, भेदन में, स्फोटन में, मोहन आदि में इन मुद्राओं का प्रयोग होता है–

उत्कर्षणं विकर्षणं तथा व्याकर्षणं पुनः।
परिग्रहश्चाप्याह्वान ताडनं तर्जनं तथा।।
संश्लेषश्च वियोगश्च रक्षणं मोहनं तथा।
विक्षेपधूनने चैव विसर्गस्तर्जनं तथा।।
ताडनं चेति विज्ञेयं तज्ज्ञैः कार्यकरान्प्रति।। [174]

नेत्र, भ्रू, मुखरागादि को व्यंजित करने के लिये करण सहित सही कर्म स्थानों तथा युक्तियों द्वारा प्रयुक्त करना चाहिये।

हस्ताभिनय लोकाचारानुरूप ही करना चाहिए। उत्तम कोटि के लोगों के लिए ललाट क्षेत्र पर मुद्राएं बनानी चाहिए। मध्यम कोटि के लोगों के प्रदर्शन के लिए वक्ष पर मुद्राएं बनानी चाहिए, तथा अधम व्यक्तियों के प्रदर्शन के लिए नीचे की ओर मुख करके मुद्राएं बनानी चाहिए।

उत्तमानां कराः कार्या ललाट क्षेत्रचारिणः।
वक्षःस्थाश्चैव मध्यानामधमानामधोगताः।। [175]

जो ज्येष्ठ हो उसका अल्प विचार करे, मध्य कोटि के नागरिकों का मध्य विचार करें। लोक और क्रिया के स्वाभावानुरूप नीचों के आशय स्पष्ट करें।

ज्येष्ठे स्वल्प प्रचाराः स्यु मध्ये मध्यविचारिण:।
लोक क्रिया स्वभावेन नीचैप्यर्थ मध्यविचरिण:।। [76]

नीच व्यक्तियों के प्रदर्शन में अन्योन्य मुद्राओं का प्रयोग करे। इसमें मुख्यत: विपरीत हस्तमुद्राओं का वर्णन होना चाहिए।

उदासी, मूर्च्छा, भय, जुगुप्सा, शोक, पीड़ा, ग्लानि, सोने में, मारने में, निश्चय में, तन्द्रा में, जड़ता में, व्याधि से पीड़ित व्यक्ति, वृद्धावस्था से आकुलता में, भय से विह्मलता में, शीत के एहसास में, मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त तथा चिन्ता आदि दिखाने में, तपस्या में स्थित होने पर, सात्त्विक भावों में, हस्ताभिनय से बचना चाहिए।

व्यग्रता दर्शाने के लिए दोनों हाथों से दृष्टि अवलोकन और विराम आदि का वाचिक अभिनय भी साथ– साथ करें।

नाट्य एवं नृत्य में तीन प्रकार की मुद्राओं का विधान है, उत्तान, पार्श्वस्थ एवं अधोमुखी। इस प्रकार यह विविध अर्थो को स्पष्ट करती है।

नृत्य में हस्तमुद्राओं की सम्प्रेषणीयता के सन्दर्भ में आचार्य भरत ने नाट्य शास्त्र में विस्तार से निर्देश दिए हैं, किन्तु प्रयोगधर्मी विधा होने के कारण नृत्य में कालानुरूप परिवर्तन भी दृष्टिगोचर होते हैं। यथा– भरत के निर्देशों के विपरीत अब कर्तरीमुख मुद्रा तर्जनी मध्यमा से बनाते हैं। यह मुद्रा अब विजय प्रदर्शन में भी प्रयुक्त होती है। पताका मुद्रा का प्रयोग वाहन आदि को रोकने में, तथा किसी अन्य व्यक्ति को बुलाने में होने लगा है। इसी प्रकार अलपल्लव मुद्रा से उड़ते हुए कपोत को दर्शाया जाता है।

कत्थक नृत्य में देवपूजन के सन्दर्भ में पताका व शिखर मुद्रा का संयुक्त प्रयोग होता है। इससे देव आरती को प्रदर्शित किया जाता है।

मणिपुरी नृत्य में पद्महस्त मुद्रा को घुमाते घुमाते नमस्कार प्रदर्शित करने का चलन है।

कुचिपुड़ी, ओडसी, भरतनाट्यम्, कुरियाट्टम में भी आचार्य भरत के द्वारा बताई गई, मुद्राओं का वैसा ही प्रयोग प्रचलित है, जैसा नाट्यशास्त्र में निर्देशित है। कत्थक आदि में रेचित मुद्रा का प्रयोग बहुलता से होता है।

इन हस्त मुद्राओं की सम्प्रेषणीयता के कारण ही नृत्य दर्शकों में सर्वग्राह्य सर्वप्रिय एवं आह्लादिकारी माना गया है। जिसके कारण सहृदय सामाजिक लौकिक धरातल से उठाकर अलौकिक रस की अनुभूति करते है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद 1/19
2. स्वतन्त्रकलाशास्त्र डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय चौखम्बा प्रकाशन– पृ.12
3. कामसूत्र– 40 आ० वात्स्यायन
4. स्वतन्त्र कलाशास्त्र डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय चौखम्बा प्रकाशन– पृ.23
5. रसार्णवसुधाकर
6. नाट्यशास्त्र 1/44 आ० भरतमुनि जयपुर प्रकाशन– पृ.13
7. अभिनव भारत अभिनव गुप्त
8. भाव प्रकाशन 10/80 शारदातनय
9. भाव प्रकाशन शारदातनय
10. भाव प्रकाशन 7/79 शारदातनय
11. नाट्यशास्त्र 20/135–136 आ० भरतमुनि
12. अभिनय दर्पण नन्दिकेश्वर
13. नाट्यशास्त्र आ० भरतमुनि
14. भाव प्रकाशन 10/89 शारदातनय
15. नाट्यशास्त्र 8/9 आ० भरतमुनि
16. नाट्यशास्त्र 8/12 आ० भरतमुनि
17. नाट्यशास्त्र 8/13 आ० भरतमुनि
18. नाट्यशास्त्र 9/4–7 आ० भरतमुनि
19. नाट्यशास्त्र 9/8–10 आ० भरतमुनि
20. नाट्यशास्त्र 9/11–17 आ० भरतमुनि
21. नाट्यशास्त्र 9/18 आ० भरतमुनि
22. नाट्यशास्त्र 9/19 आ० भरतमुनि
23. नाट्यशास्त्र 9/25–26 आ० भरतमुनि
24. नाट्यशास्त्र 9/27 आ० भरतमुनि
25. नाट्यशास्त्र 9/28 आ० भरतमुनि

26. नाट्यशास्त्र 9/29 आ० भरतमुनि
27. नाट्यशास्त्र 9/30 आ० भरतमुनि
28. नाट्यशास्त्र 9/31 आ० भरतमुनि
29. नाट्यशास्त्र 9/32 आ० भरतमुनि
30. नाट्यशास्त्र 9/33 आ० भरतमुनि
31. नाट्यशास्त्र 9/34–35 आ० भरतमुनि
32. नाट्यशास्त्र 9/35 आ० भरतमुनि
33. नाट्यशास्त्र 9/36 आ० भरतमुनि
34. नाट्यशास्त्र 9/37 आ० भरतमुनि
35. नाट्यशास्त्र 9/38 आ० भरतमुनि
36. नाट्यशास्त्र 9/39 आ० भरतमुनि
37. नाट्यशास्त्र 9/40 आ० भरतमुनि
38. नाट्यशास्त्र 9/41–42 आ० भरतमुनि
39. नाट्यशास्त्र 9/42 आ० भरतमुनि
40. नाट्यशास्त्र 9/43 आ० भरतमुनि
41. नाट्यशास्त्र 9/44 आ० भरतमुनि
42. नाट्यशास्त्र 9/45 आ० भरतमुनि
43. नाट्यशास्त्र 9/46 आ० भरतमुनि
44. नाट्यशास्त्र 9/47 आ० भरतमुनि
45. नाट्यशास्त्र 9/48 आ० भरतमुनि
46. नाट्यशास्त्र 9/49 आ० भरतमुनि
47. नाट्यशास्त्र 9/50 आ० भरतमुनि
48. नाट्यशास्त्र 9/51 आ० भरतमुनि
49. नाट्यशास्त्र 9/52 आ० भरतमुनि
50. नाट्यशास्त्र 9/53 आ० भरतमुनि
51. नाट्यशास्त्र 9/54 आ० भरतमुनि
52. नाट्यशास्त्र 9/55 आ० भरतमुनि
53. नाट्यशास्त्र 9/56 आ० भरतमुनि
54. नाट्यशास्त्र 9/57 आ० भरतमुनि

55. नाट्यशास्त्र 9/58 आ० भरतमुनि
56. नाट्यशास्त्र 9/59–60 आ० भरतमुनि
57. नाट्यशास्त्र 9/61 आ० भरतमुनि
58. नाट्यशास्त्र 9/62 आ० भरतमुनि
59. नाट्यशास्त्र 9/63 आ० भरतमुनि
60. नाट्यशास्त्र 9/64 आ० भरतमुनि
61. नाट्यशास्त्र 9/65 आ० भरतमुनि
62. नाट्यशास्त्र 9/66 आ० भरतमुनि
63. नाट्यशास्त्र 9/67–68 आ० भरतमुनि
64. नाट्यशास्त्र 9/69 आ० भरतमुनि
65. नाट्यशास्त्र 9/70 आ० भरतमुनि
66. नाट्यशास्त्र 9/71 आ० भरतमुनि
67. नाट्यशास्त्र 9/72 आ० भरतमुनि
68. नाट्यशास्त्र 9/73 आ० भरतमुनि
69. नाट्यशास्त्र 9/74 आ० भरतमुनि
70. नाट्यशास्त्र 9/75 आ० भरतमुनि
71. नाट्यशास्त्र 9/76 आ० भरतमुनि
72. नाट्यशास्त्र 9/77 आ० भरतमुनि
73. नाट्यशास्त्र 9/78 आ० भरतमुनि
74. नाट्यशास्त्र 9/79 आ० भरतमुनि
75. नाट्यशास्त्र 9/80 आ० भरतमुनि
76. नाट्यशास्त्र 9/81 आ० भरतमुनि
77. नाट्यशास्त्र 9/82 आ० भरतमुनि
78. नाट्यशास्त्र 9/83 आ० भरतमुनि
79. नाट्यशास्त्र 9/84 आ० भरतमुनि
80. नाट्यशास्त्र 9/85 आ० भरतमुनि
81. नाट्यशास्त्र 9/86 आ० भरतमुनि
82. नाट्यशास्त्र 9/87 आ० भरतमुनि
83. नाट्यशास्त्र 9/88 आ० भरतमुनि

84. नाट्यशास्त्र 9/89 आ० भरतमुनि
85. नाट्यशास्त्र 9/90 आ० भरतमुनि
86. नाट्यशास्त्र 9/91 आ० भरतमुनि
87. नाट्यशास्त्र 9/92 आ० भरतमुनि
88. नाट्यशास्त्र 9/93 आ० भरतमुनि
89. नाट्यशास्त्र 9/94 आ० भरतमुनि
90. नाट्यशास्त्र 9/95 आ० भरतमुनि
91. नाट्यशास्त्र 9/96 आ० भरतमुनि
92. नाट्यशास्त्र 9/97 आ० भरतमुनि
93. नाट्यशास्त्र 9/98 आ० भरतमुनि
94. नाट्यशास्त्र 9/99 आ० भरतमुनि
95. नाट्यशास्त्र 9/110 आ० भरतमुनि
96. नाट्यशास्त्र 9/101 आ० भरतमुनि
97. नाट्यशास्त्र 9/102 आ० भरतमुनि
98. नाट्यशास्त्र 9/103 आ० भरतमुनि
99. नाट्यशास्त्र 9/104 आ० भरतमुनि
100. नाट्यशास्त्र 9/105 आ० भरतमुनि
101. नाट्यशास्त्र 9/106 आ० भरतमुनि
102. नाट्यशास्त्र 9/107 आ० भरतमुनि
103. नाट्यशास्त्र 9/108 आ० भरतमुनि
104. नाट्यशास्त्र 9/109 आ० भरतमुनि
105. नाट्यशास्त्र 9/110 आ० भरतमुनि
106. नाट्यशास्त्र 9/111 आ० भरतमुनि
107. नाट्यशास्त्र 9/112 आ० भरतमुनि
108. नाट्यशास्त्र 9/113 आ० भरतमुनि
109. नाट्यशास्त्र 9/114 आ० भरतमुनि
110. नाट्यशास्त्र 9/115 आ० भरतमुनि
111. नाट्यशास्त्र 9/116 आ० भरतमुनि
112. नाट्यशास्त्र 9/117 आ० भरतमुनि

113. नाट्यशास्त्र 9/118 आ० भरतमुनि
114. नाट्यशास्त्र 9/119 आ० भरतमुनि
115. नाट्यशास्त्र 9/120 आ० भरतमुनि
116. नाट्यशास्त्र 9/121 आ० भरतमुनि
117. नाट्यशास्त्र 9/122 आ० भरतमुनि
118. नाट्यशास्त्र 9/123 आ० भरतमुनि
119. नाट्यशास्त्र 9/124 आ० भरतमुनि
120. नाट्यशास्त्र 9/126 आ० भरतमुनि
121. नाट्यशास्त्र 9/127 आ० भरतमुनि
122. नाट्यशास्त्र 9/128 आ० भरतमुनि
123. नाट्यशास्त्र 9/129 आ० भरतमुनि
124. नाट्यशास्त्र 9/130 आ० भरतमुनि
125. नाट्यशास्त्र 9/131 आ० भरतमुनि
126. नाट्यशास्त्र 9/132 आ० भरतमुनि
127. नाट्यशास्त्र 9/133 आ० भरतमुनि
128. नाट्यशास्त्र 9/134 आ० भरतमुनि
129. नाट्यशास्त्र 9/135 आ० भरतमुनि
130. नाट्यशास्त्र 9/136 आ० भरतमुनि
131. नाट्यशास्त्र 9/137 आ० भरतमुनि
132. नाट्यशास्त्र 9/138 आ० भरतमुनि
133. नाट्यशास्त्र 9/139 आ० भरतमुनि
134. नाट्यशास्त्र 9/140 आ० भरतमुनि
135. नाट्यशास्त्र 9/141 आ० भरतमुनि
136. नाट्यशास्त्र 9/142 आ० भरतमुनि
137. नाट्यशास्त्र 9/143 आ० भरतमुनि
138. नाट्यशास्त्र 9/144 आ० भरतमुनि
139. नाट्यशास्त्र 9/145 आ० भरतमुनि
140. नाट्यशास्त्र 9/146 आ० भरतमुनि
141. नाट्यशास्त्र 9/147 आ० भरतमुनि

142. नाट्यशास्त्र 9/148 आ० भरतमुनि
143. नाट्यशास्त्र 9/149 आ० भरतमुनि
144. नाट्यशास्त्र 9/150 आ० भरतमुनि
145. नाट्यशास्त्र 9/151 आ० भरतमुनि
146. नाट्यशास्त्र 9/152 आ० भरतमुनि
147. नाट्यशास्त्र 9/153 आ० भरतमुनि
148. नाट्यशास्त्र 9/176 आ० भरतमुनि
149. नाट्यशास्त्र 9/179 आ० भरतमुनि
150. नाट्यशास्त्र 9/180 आ० भरतमुनि
151. नाट्यशास्त्र 9/181 आ० भरतमुनि
152. नाट्यशास्त्र 9/182 आ० भरतमुनि
153. नाट्यशास्त्र 9/183 आ० भरतमुनि
154. नाट्यशास्त्र 9/184 आ० भरतमुनि
155. नाट्यशास्त्र 9/असिप्त 184 आ० भरतमुनि
156. नाट्यशास्त्र 9/185 आ० भरतमुनि
157. नाट्यशास्त्र 9/186 आ० भरतमुनि
158. नाट्यशास्त्र 9/187 आ० भरतमुनि
159. नाट्यशास्त्र 9/188 आ० भरतमुनि
160. नाट्यशास्त्र 9/189 आ० भरतमुनि
161. नाट्यशास्त्र 9/190 आ० भरतमुनि
162. नाट्यशास्त्र 9/191 आ० भरतमुनि
163. नाट्यशास्त्र 9/192 आ० भरतमुनि
164. नाट्यशास्त्र 9/193 आ० भरतमुनि
165. नाट्यशास्त्र 9/194 आ० भरतमुनि
166. नाट्यशास्त्र 9/195 आ० भरतमुनि
167. नाट्यशास्त्र 9/196 आ० भरतमुनि
168. नाट्यशास्त्र 9/197 आ० भरतमुनि
169. नाट्यशास्त्र 9/198 आ० भरतमुनि

170. नाट्यशास्त्र 9/199 आ० भरतमुनि
171. नाट्यशास्त्र 9/200 आ० भरतमुनि
172. नाट्यशास्त्र 9/206 आ० भरतमुनि
173. नाट्यशास्त्र 9/ आ० भरतमुनि
174. नाट्यशास्त्र 9/160–164 आ० भरतमुनि
175. नाट्यशास्त्र 9/160 आ० भरतमुनि
176. नाट्यशास्त्र 9/167 आ० भरतमुनि

चारी की सम्प्रेषणीयता

अभिनय के आंगिक भेद में जहाँ हाथों के चौंसठ भेद माने गए हैं वही पैरों के गमन पर आधारित अभिनय का नाम चारी है। चारी में प्रयोगकर्ता अपने पाद जंघा और ऊरू की गति में एक लयात्मकता एवं गत्यात्मकता का प्रदर्शन करता है। पैर जंघा ऊरू और कटि इन अंगों के संयुक्त चलनात्मक प्रक्रिया का नाम चारी है। चारी शब्द का सामान्य आशय चाल से है। इसे कथकली नृत्य में सीरी, मणिपुरी नृत्य में इसे चाली एवं अंग्रेजी में इसे स्टैप कहते है।

विधान से युक्त अंगों को परस्पर सम्बद्ध करती है इसीलिए चारी कहलाती है। चारी के चार भेद हैं– 1. एक पैर से भरा जाने वाला डग चारी (संचारी) 2. दोनों चरणों से होने वाली गति का नाम 'करण' है। 3. तीन करणों के योग का नाम खण्ड है। 4. तीन चार खण्डों के मिलने का नाम मण्डल चारी बनती है।

एक पाद प्रचारो यः सा चारीत्यभिसंज्ञिता
द्विपादक्रमणं यत्तु करणं नाम तद्भवेत्
करणानां समायोगः खण्ड इत्यभिधीयते
खण्डैस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा संयुक्तै मण्डल भवेत्।। [2]

चारी से ही नृत्य एवं नृत्त, हलचल, शास्त्र प्रयोग एवं युद्धादि को प्रस्तुत किया जाता है। नाट्य रूप में जो भी है। उसमें चारी का समावेश है। नृत्य गति एवं युद्ध योजना का प्रस्तुतीकरण चारी के बिना सम्भव नहीं है। चारी के दो मुख्य भेद है। भौम चारी दूसरी आकाश चारी। भौम चारी सोलह प्रकार की है–

समपादा स्थितावर्ता शकट्रास्या तथैव च
अध्यर्थिका चाषगति र्विच्यवा च तथापरा
एलकाक्रीडिता बद्धा उरूद्वत्ता तथाड्‌िता
उत्स्पन्दिताथ जनिता स्पन्दिता चापस्पन्दिता
समोत्सारित मत्तल्ली मत्तल्लीचेति षोडश
एता भौम्यस्मृताश्चार्य [1]

भूगत या भूमि गत 16 चारी है। 1. समपादा, 2. स्थितावर्ता, 3. शकटास्या 4. अध्यर्थिका, 5. चाषगति, 6. विच्यवा, 7. एलकाक्रीडिता, 8. बद्धा, 9. उरूद्धत्ता, 10. अड्डिता, 11. उत्स्पन्दिता, 12. जनिता, 13. स्पन्दिता, 14. अपस्पन्दिता, 15. समोत्सारित, 16. मत्तल्ली चारी ।

सोलह प्रकार की आकाशचारी भी नाट्य में प्रयुक्त होती है– 1. अतिक्रान्ता 2. अपक्रान्ता, 3. पार्श्वक्रान्ता, 4. ऊर्ध्वजानु, 5. सूची, 6. नूपुर पादिका 7. दोलापादा, 8. आक्षिप्ता, 9. आविद्धा, 10. उद्‌वृता, 11. विद्युद्भ्रान्ता 12. अलाता, 13. भुजंग त्रासिता, 14. हरिणीप्लुता, 15. दण्डा, 16. भ्रमरी

श्रृणुताकाशिकी पुनः
अतिक्रान्ता ह्यपक्रान्ता पार्श्वक्रान्ता तथैव च
ऊर्ध्वजानुश्च सूची च तथा नूपुरपादिका
दोलापादा तथाक्षिप्ता आविद्धोद्वत्तसंज्ञिते।
विद्युद्भ्रान्ता ह्यलाता च भुजङ्गत्रासिता तथा।। [3]
मृगप्लुता च दण्डा च भ्रमरी चेति षोडश

भौमी चारी– भूमि पर ही पदन्यास सर्वोत्तम है। इस चारी के माध्यम से शरीर में गति एवं युद्धादिक क्रियाओं को सहजता से प्रस्तुत कर सकते है।

1. समपादा– यह प्रथम भौमी चारी है जिसमें दोनों पैरों को पास रखते हुए नखों को बराबर से मिलाते हुए अपने स्थान पर स्थित रहते है तो समपादा चारी है।

पदैनिरन्तरकृतस्तथा समनखैरपि
समपादा तु सा चारी विज्ञेया स्थानसंश्रया।। [4]

किसी स्थान विशेष पर पैरों को समान रूप से रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जावे तो चलने से चारी होगी क्योंकि चरणों में सम रूपता है। इसीलिए ये समपादा कहलाएगी।

2. स्थितावर्त्ता– भूमि पर पैर रगड़ते हुए चरण को ऊपर उठाकर स्वस्तिक बनाते हुए दूसरे पैर को अपने पास खींचे और बारम्बार इसी गति को करें तो यह स्थितावर्त्ता चारी है।

भूमि धृष्टेन पादेन कृत्वाभ्यन्तर मण्डलम्
पुनरुत्सायेदन्यं स्थितावर्ता तु सा स्मृतम्।। [5]

चरण के अग्र भाग से संचरण करने से भूमि पर पैर घिसटते हुए रखा ऐसे चलने में आन्तरिक मण्डल निर्माण कर स्वस्तिक बनाना इसी क्रम में चरण घिस घिसकर चलना स्थितावर्ता चारी है।

3. *शकटास्या*– अग्रतल संचरण से सीने की ओर एक पैर सीधा रखकर तथा दूसरा छाती से उद्वाहित स्थिति में रखे तो इसे शकटास्या चारी कहते है–

निषणाङ्गस्तु चरणं प्रसार्य तलसञ्चरण
उद्वाहितमुरः कृत्वाशकटास्यां प्रयोजयेत्।। [6]

शरीर के पूर्वभाग को सायास धारण का शकट–आसन में शरीर को लाना ही शकटास्या चारी है।

4. *अध्यर्थिका चारी*– बाएं पैर की एड़ी पर दहिना पैर रखकर उसे पीछे हटाया जाए यही अध्यर्थिका चारी है। दॉए पैर की एड़ी की ओर पीछे रख कर दहिना पैर उत्सर्पण में तिरछा आवे यह अर्धतालान्तर पर रखी जाती है। एवं इसमें करणों का प्राधान्य है–

साव्यस्थ पृष्ठतो वामश्चरणस्तु यदाभवेत्।
तस्यापसर्पणञ्चैव ज्ञेया साध्यर्थिका बुधैः।। [7]

5. *चाषगति चारी*– दाएं पैर को फैलाकर पीछे कर दिया जाए पुनः बॉए पैर से वही क्रिया की जाए तो उसे चाषगति चारी कहते है। इस चारी में बॉए पैर से अपसर्पण की क्रिया होती है। यह चाषपक्षी (नीलकण्ठ) की गति जैसी है–

पादः प्रसारितः सव्यः पुनश्चैवोपसर्पतः
वामः सव्याप सर्पी च चाषगत्यां विधीयते।। [8]

6. *विच्यवा*– जैस समपादा चारी के पैरों को अलग–अलग हटाते हुए पटकते हैं तो वह विच्यवा चारी है–

विच्यवात् समपादाया विच्यवां सम्प्रयोजयेत्।
निकुट्टयंस्तलाग्रेण पादस्य धरणीतलम्।। [9]

7. एडाकाक्रीडिता चारी– जिसमें पैरो को उछालकर क्रमशः पृथ्वी पर रखते है तो एडकाक्रीडिता चारी है।

तलसञ्चर पादाभ्यामुप्तलुत्य पतनन्तु यत्।
पर्यायशश्च क्रियते एडकाक्रीडिता तु सा ।। [10]

पैर जंघा घुटना एड़ी एक साथ गतिमान हो और उछलकर बकरी के समान गमन हो ती एडकाक्रीडिता चारी बनेगी।

बद्धा चारी– पिड़लियों को धीरे–धीरे स्वतिकाकार में हिलाना बद्धाचारी है। जहाँ ऊरू संचालन के द्वारा जंघा का स्वस्तिक निर्माण किया जाता है। उसे बद्धाचारी कहते है–

अन्योन्य जङ्घसंवेधात् कृत्वा तु स्वस्तिक ततः
उरुभ्यां वलनं यस्मात् सा बद्धा चार्युदाहृता।। [11]

उरूद्वृता चारी– चरणं संचार पाद में जब पैर आगे रखा जाए और पिण्डली को झुकाकर जंघा को ऊपर उठा लिया जाए तो उसे उरूद्वृता चारी कहते है।

तलसञ्चरपादस्य पाष्णिर्वाह्यन्मुखी सा
जङ्घाञ्चिता तथोद्धत्ता उरूद्वृतेति तु सा।। [12]

अग्रतलसंचर पाद में एड़ी जब दूसरे पैर के पृष्ठभाग की ओर उन्मुख हो और घुटनों को झुकाने से जंघा संकुचित होकर दूसरी जंघा के सामने बलन से उदवृत्ता स्थिति में आ जाए तो इस उरुद्वृत्ता चारी कहते है। क्योंकि इसमें ऊपर ऊरुओं में बलन होता है। लज्जा एवं ईर्ष्या के भाव में इसकी योजना रखी जाती है।

अड्डिता चारी– अग्रतलसंचर पाद में जब पैर को आगे या पीछे पृथ्वी पर रगड़ते हुए रखा जाता है। तो उसे अड्डिता चारी कहते है–

अग्रतः पृष्ठतो वापि पादोऽग्रतलसञ्चरः
द्वितीयपादनिर्घृष्टो यस्यां स्यादड्डिता तु सा।। [13]

जब एक पाद सम स्थिति एवं दूसरा पैर तलसञ्चर स्थिति में आगे और पीछे क्रमशः शिलष्ट होता है। इसमें पाद अपने स्थान से अतिक्रमण करता है। अतः इसका नाम अड्डिता है।

उत्स्पन्दिता चारी– रेचक के अनुसार दोनों पैरों को क्रमशः एक दूसरे के पीछे घुमाया जाए तो उत्स्पन्दिता चारी होती है–

शनैः पादो निवर्तेत वाह्येनाभ्यन्तरेण च ।
यद् रेचकानुसारेण सा चार्युत्स्पन्दिता स्मृता।। [14]

पैर की कनिष्ठिका अंगुली के बाहरी भाग और दूसरे पैर के भीतरी भाग से निवर्तन होता है। वह पैर का अपसारण रेचितपाद की अवधि का रखा जाता है। चारी में शोभा वृद्धि के लिए अपसारण की योजना की जाती है। यह नदी के प्रत्यावर्तन के रूप में स्पन्दित के जैसा है अतः इसे उत्स्पन्दिता चारी कहा गया है।

जनिता चारी– यदि एक मुष्ठि हस्त छाती पर एवं दूसरा गोलाकार घुमाते हुए अग्रतल संचर दशा में चले तो जनिता चारी होगी–

मुष्टिहस्तश्च वक्षस्थः करोऽन्यश्च प्रवर्तितः
तलसञ्चरपादश्च जनिता चार्युदाहृता।। [15]

इसमें तलसंचर पाद से गमन किया जाता है। यह समस्त गतियों की जननी होती है। इसी से गतियॉ आरम्भ की जाती है। इसमें मुट्ठी वक्ष पर रख कर अन्य हस्त प्रसारण कर इति कर्तव्यता को दिखलाया जाता है।

स्यन्दिता चारी अपस्यन्दिताचारी– समस्थित एवं निषण्ण ऊरू वाले दॉए पैर को पंच तालों के अन्तर से फैला दिया जाता है। इस फैलाने रूप धर्म से ही इसे स्यन्दिता कह गया और इसके विपरीत करने पर इसे अपस्यन्दिता चारी नाम दिया गया।

पञ्चतालान्तरं पादं प्रसार्य स्यन्दितां न्यसेत् ।
द्वितीयेन तु पादेन तथापस्यन्दितामपि ।। [16]

यदि एक पैर को दूसरे से पाँच ताल के अन्तर से सामने रखते हैं तो स्यन्दिता चारी और यदि दूसरे पैर को पहले पैर के सामने पाँच ताल के अन्तर से रखते हैं तो अपस्यन्दिता चारी मानें।

समोत्सारिता चारी– तलसंचरण में पीछे की ओर गोल चक्कर लगाते हुए जाया जाए तो समोत्त्सारित मतल्ली चारी हो जाती है–

तलसञ्चरपादाभ्यां घूर्णमानोपसर्पणैः
समोत्सारितमतल्ली व्यायामे समुदाहृता।। [17]

इसमें परस्पर जंघाओं के वेध से किए जाने वाले स्वस्तिक के बीच या जब एक तलसंचरपाद हो तब ही दूसरे तलसंचर उसी समय हो तो घूमते हुए पादों का उपसर्पण हो यह समोच्सारित मतल्ली चारी बनाता है। एक सम अर्थात् अविकल रूप में उत्सारित तथा दूसरी मत्तल्ली चारी बनाता है। एक सम अर्थात् अविकल रूप में उत्सारित तथा दूसरी मत्तल्ली अर्थात् मद से विकल न होना या रक्षार्थ अन्यत्र पलायन करना। इस चारी का प्रयोग मध्यम मद अभिनय योजना में किया जाता है।

मत्तल्ली चारी– इसमें अग्रतलपाद भूमि में लगता या श्लिष्ट रहता है। यहाँ जंघा स्वस्तिक के योग से अर्ध त्र्यश्र (आधा तिरछा) होने से तथा पैरों के घूर्णन और अपसर्पण करने के कारण यह मत्तल्ली चारी है। यह प्रगाढ़मद योजना में प्रयुक्त होती है–

उभाभ्यामपि पादाभ्यां घूर्णमानोपर्सणै:
उद्वेष्टितापिविद्वेष्टश्च हस्तैर्मत्तुल्युदाहृता।। [18]

इन भूमि चारियों का प्रयोग मल्लयुद्ध, युद्ध मदविकार आदि में क्रमशः करण अङ्गहार एवं नाट्य प्रस्तुतीकरण में किया जाना चाहिए।

आकाश चारी

1. अतिक्रान्ता चारी– एक कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर सामने फैलाकर और ऊपर उठाकर पुनः पटक दें तो अतिक्रान्ता चारी बनती है–

कुञ्चित पादमत्क्षिप्य पुरतः सम्प्रसारयेत्
उत्क्षिप्य पातयेच्चैन्मतिक्रान्ता तु सा स्मृता।। [19]

कुञ्चित पाद को दूसरे पैर के घुटने के क्षेत्र में रख कर आगे फैलाया जाए और पारताल की दूसरी तक ऊपर उठाकर पुनः भूमि पर रखते हुए गमन किया जाए तो यह अतिक्रान्ता चारी है।

अपक्रान्ताचारी– दोनों उरु के स्वस्तिक बनाकर पहले बद्धाचारी कर ऊपर बाजू उठाकर क्षिप्त दशा में रखे तो इसे अपक्रान्ता चारी कहते हैं दोनो पिण्डलियों को घुमाकर वलन द्वारा क्रिया को प्रदर्शित कर एक कुञ्चित पैर ऊपर उठाकर बाजू में मारे तो अपक्रान्ता चारी है–

उरुभ्यां वलनं कृत्वा कुञ्चितं पादमुद्धरेत्

पार्श्वे विनिक्षिपेच्चैनमपक्रान्ता तु सा स्मृता।। [20]

पार्श्वक्रान्ता चारी– पैर कुंचित दशा में जंघा से ऊपर ले जाए उसी ऊपर उठे पैर को एक बाजू की ओर ले जाए तो पार्श्वक्रान्ता चारी है–

कुंचित पादमुत्क्षिप्य जानु सम्प्रसारयेत

उदर्घद्विदेन पादेकदेश स्थिता पार्श्वक्रान्ता ।। [21]

इस चारी में कुञ्चित पाद को अपनी बगल के ऊपर लाकर पुनः भूमि पर एड़ी को रखा जाता है। अतः कुञ्चित पाद में यहाँ एड़ी का उद्घाटित होना सूचित है।

ऊर्ध्वजानु चारी– कुंचित पैर को ऊपर उठाकर जंघा को वक्ष के बराबर ऊँचा कर दिया और दूसरा घुटना स्तब्ध रखा जाए और पुनः दूसरे पैर को भी कुंचित किया जाए तो यह ऊर्ध्वजानु नामक चारी है।

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्त जानु स्तनसमं न्यसेत्

द्वितीयञ्च क्रमस्तब्धमूर्ध्वजानुः प्रकीर्तिता।। [22]

क्रम से स्तब्ध एवं पाद उत्क्षेपण का नाम ऊर्ध्वजानुचारी है।

सूची चारी– कुञ्चित पाद को जंघा के ऊपर लाकर फैला दिया जाता है। फिर पंजे को भूमि पर स्पर्श करते है तो यह सूची चारी है–

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्त जानूर्ध्वे सम्प्रसारयेत्

पातयेच्चोग्रयोगेन सा सूची परिकीर्तिता।। [23]

घुटने से ऊपर उरू तक जंघा पूरी फैलाकर अग्रभाग से भू स्पर्श हो तो सूची के आकार के कारण इसे सूची चारी कहेंगे।

नूपुरपादिका चारी– पीछे पैर से अंचित कर पीछे की ओर एड़ी का स्पर्श करते हुए अन्त तक ले जावे और बाजू से उस अग्रतल संचर पैर को पृथ्वी पर लावे। ऐसा करने से नूपुरों को आवाज निकलेगी। इसी आधार पर इसे यह संज्ञा प्राप्त हुई–

पृष्ठतो ह्यञ्चितं कृत्वां पादमग्रतलेन तु।

द्रुतं निपातयेद् भूमौ चारी नूपुरपादिका।। [24]

अंचित पैर ऊपर उठाकर दूसरे पैर के पीछे रखे एवं अग्रतल संचर पैर को शीघ्रता से मारे तो इस चारी का निर्माण होता है।

दोलपादा चारी– उत्क्षिप्त पद को दाहिने पैर के बराबर तक लाए फिर यहाँ दोला के आकार में स्पन्दित कर बाद में किनारे से पृथ्वी पर रखें। कुंचित पाद को ऊपर उठाकर एक ओर दूसरी पैर तक लाकर हिलाए फिर अंचित दशा में पृथ्वी पर लाए–

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य पार्श्वात् पार्श्वन्तु दोलयेत्
पातयेदञ्चितञ्चैव दोलापाद प्रकीर्तिता।। [25]

आक्षिप्ता चारी– आक्षिप्त पाद को आगे तीन ताल अन्तर से उछाल कर अंचित के अर्धमण्डलाकार में बाजू से लाकर स्वस्तिक का निर्माण करें। यदि कुञ्चित पैर उठाकर अंचित दशा में पृथ्वी पर रख दें तथा जंघाओं को स्वस्तिक बने तो आक्षिप्ता चारी है–

कुञ्चितं पादमुत्क्षिप्य आक्षिप्य त्वञ्चितं न्यसेत्।
जङ्घा स्वस्तिक संयुक्ता चाक्षिप्ता नाम सा स्मृता।। [26]

आविद्धा चारी– यदि जंघा के स्वस्तिक में एक पैर आगे की ओर फैलाते समय कुंचित रखें तथा अंचित पाद को पृथ्वी पर रखें तो आबिद्धा चारी बन जाती है–

पादमाविद्धामावेष्ट्य समुत्प्लुत्य निपातयेत्।
परिवृत्य द्वितीयञ्च सोद्धृत्ता चार्युदाहृता ।। [27]

इसमें आविद्धा के एड़ी तक आवेष्टन को उछाल देकर भ्रमरक की तरह पृथ्वी पर पटक दें और दूसरे पैर का इसी प्रकार उद्वर्तन करें तो उसे उद्वृत्ता चारी नाम दिया जाता है।

विद्युद्भ्रान्ता चारी– यदि पैर पीछे घुमाकर एड़ी तक रगड़ खाता हुआ फैलाऐ फिर गोल चक्कर के साथ पृथ्वी पर लाएं तो विद्युद्भ्रान्ताचारी बनेगी। पीछे की ओर उरु के मूल में घुमावे और किनारे से मस्तक का स्पर्श कर उस पैर को गोल घुमाकर पृथ्वी पर रखा जाए तो विद्युद्भ्रान्ता चारी है–

पृष्ठतो बलितं पादं शिरोधृष्टं प्रसारयेत्।
सर्वतो मण्डलाविद्धं विद्युद्भ्रान्ता तु सा स्मृता।। [28]

अलाता चारी– एक पैर पीछे फैलाकर अन्दर घुमाते हुए दूसरे पैर के पंजे के पास आकर भूमि पर मारें तो अलाता चारी का निर्माण होता है।

पृष्ठे प्रसारिताः पादो वलितोऽभ्यन्तरीकृत।
पार्ष्णिप्रयतितश्चैव ह्यलाता सम्प्रकीर्तिता।। [29]

इस चारी में पहले पाद को पीछे फैलाते हुए घुमाकर भीतर लिया जाता है। और इसके बाद इसे एडी के पास जमीन पर पटका जाता है। अलातचक्र की आकृति में आने से इसका नाम अलाता चारी है।

भुजङ्गत्रासिता चारी– यदि कुञ्चित पैर को ऊपर उठाकर पिंडली को गोल चक्कर में घुमाकर कटि एवं जंघा को घुमावें नितम्ब के सम्मुख त्रिकोण एड़ी का परिवर्तन करें इसके बाद बराबर के जानु पर एक पैर को उत्तालतल में स्थापित करें, पैर के समीप सर्प के आने पर भय से इधर–उधर भागने वाले की तुलना से निर्मित यह चारी स्वनामनुरूप है–

कुंचितं पादमुत्क्षिप्य त्र्यश्चमूरूं विवर्तयेत्
कटी जानु विवर्त्ताच्च भुजङ्ग त्रासिता भवेत्।। [30]

हरिणप्लुता– अतिक्रान्त्या चारी में उछाल भरकर पृथ्वी पर पैर टिका दें जंघा को अंचित पाद युक्त कर आक्षिप्त दशा में पैर नीचे पटकें तो हरिणप्लुता चारी होगी। अतिक्रान्ताचारी के कुंचित पैर से उछल कर भूमि पर पैर रखना। इस प्रकार मृग की, प्लुति (गति) तुल्य यह चारी है इसका प्रयोग विदूषक की गति आदि योजना में रखा जाता है–

अतिक्रान्ताक्रमं कृत्वा चोत्प्लुत्य विनिपातयेत्।
जंघाञ्चिता परिक्षिप्ता सा ज्ञेया हरिणप्लुता।। [31]

दण्डपादा चारी– यदि नूपुर चारी को दिखाकर पैर फैलाकर पीछे किया जाए तो दण्डाचारी बनती है। अंचित पाद को दूसरे पैर की एडी के पास ले जाकर शीघ्रता से फैलावे। इस प्रकार ऊरू जानु जंघा की स्तब्धता से पैर के दण्डाकार स्थिति में आने के कारण इसे दण्डपादा चारी कहते है–

नूपुरं चरणङ्कृत्वा पुरतः सम्प्रसारयेत्।
क्षिप्तमाविद्धकरणं दण्डपादा तु सा स्मृता।। [32]

भ्रमरी चारी– अतिक्रान्ताचारी में एक पैर ऊपर उठाकर सम्पूर्ण शरीर को घुमाव देकर दूसरे पैर के निकट जमीन पर रखे तो भ्रमरी चारी कहलाती है। कुंचित पाद को ऊपर कर सूर्य से डरे की तरह तिरछी ऊरू को घुमाकर फिर दूसरे पैर तल से घुमने में सम्पूर्ण शरीर घूमेगा अतः इसका नाम भ्रमरी चारी है–

अतिक्रान्ताक्रमं कृत्वां त्रिकन्तु परिवर्तयेत्।
द्वितीयपाद भ्रमणान्तलेन भ्रमरी स्मृता।। [33]

इन आकाशिकी चारियों से धनुष वज्र तलवार आदि शस्त्रों का संचालन प्रदर्शित किया जाता है। [34] जैसी पैरों की गति हो उसी अनुरूप उसी हाथ में भी गति दिखायी जानी चाहिए–

ज्योंहि चारी प्रदर्शन के बाद पैर भूमि पर आए वैसे ही हाथ भी कटि पर आ जाना चाहिए।

इन चारियों के माध्यम से नाट्य एवं नृत्य में विविध क्रियाओं को सम्प्रेषित किया जाता है। जैसे हरिणप्लुता से वन्य जीवों की गति पक्षियों का उड्डयन, युद्धादि क्रियाओं को सहजता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

1. नाट्य शास्त्र 11/3–4
2. नाट्य शास्त्र 11/8–9
3. नाट्य शास्त्र 11/10–12
4. नाट्य शास्त्र 11/14
5. नाट्य शास्त्र 11/15
6. नाट्य शास्त्र 11/16
7. नाट्य शास्त्र 11/17
8. नाट्य शास्त्र 11/18
9. नाट्य शास्त्र 11/19
10. नाट्य शास्त्र 11/20
11. नाट्य शास्त्र 11/21
12. नाट्य शास्त्र 11/22
13. नाट्य शास्त्र 11/23
14. नाट्य शास्त्र 11/24
15. नाट्य शास्त्र 11/25
16. नाट्य शास्त्र 11/26
17. नाट्य शास्त्र 11/27
18. नाट्य शास्त्र 11/28
19. नाट्य शास्त्र 11/30
20. नाट्य शास्त्र 11/31
21. नाट्य शास्त्र 11/32
22. नाट्य शास्त्र 11/33
23. नाट्य शास्त्र 11/34
24. नाट्य शास्त्र 11/35
25. नाट्य शास्त्र 11/36
26. नाट्य शास्त्र 11/37
27. नाट्य शास्त्र 11/39
28. नाट्य शास्त्र 11/40
29. नाट्य शास्त्र 11/41
30. नाट्य शास्त्र 11/42
31. नाट्य शास्त्र 11/43
32. नाट्य शास्त्र 11/44
33. नाट्य शास्त्र 11/45
34. नाट्य शास्त्र 11/46

आंगिक अभिनय की सम्प्रेषणीयता

नाट्य कला एक प्रायोगिक कला है जिसमें दर्शक अपने श्रवणेन्द्रिय एवं दृश्येन्द्रिय के संयुक्त ज्ञान से सहज ही विषयों के बोध को प्राप्त हो जाता है। इस ज्ञान साधन के लिए नट जिस साधना को प्रस्तुत करता हे। उसका नाम अभिनय हे। अभिनय शब्द अभि उपसर्ग पूर्वक √णी प्रापणे धातु से अच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।

अत्रोच्यते– अभीत्युपसर्गः णीत्रित्यर्थः धातुः प्रापणर्थः अस्याभिनीत्येयं व्यवस्थितस्यं एरजित्यच् प्रत्ययान्तस्य अभिनय इति रूपं सिद्धम् अभिनय अपने मुख्य प्रयोजन तक ले जाने में समर्थ है, इसलिए इसे अभिनय कहते है यह– 1. आंगिक, 2. वाचिक, 3. आहार्य एवं 4. सात्विक भेद से युक्त है।

जहाँ अंगों से अभिनय होता है उसे आंगिक अभिनय कहते है यह त्रिविध भेद से युक्त है 1. शारीरज, 2. मुखज, 3. चेष्टाकृत। यह अभिनय अपने शाखा अङ्ग उपांग से संवलित रहता है। नाट्य छः अंगों वाला होता है। छः अंग है मस्तक, हस्त, वक्ष, स्थल, कटि, कोख (पार्श्व) और पैर।

तस्य शिरो हस्तोरः पार्श्व कटीपादतः षडङ्गनि

नेत्रभ्रूनासाधरकपोल चिबुकान्युपाङ्गानि।।[1]

माथा, हाथ, वक्ष, पार्श्व और पैर छः अंग है। नेत्र, भ्रू, नासिका, ओंठ, टुड्डी और कपोल ये छः उपाङ्ग है।

अभिनय शाखा (आंगिक अभिनय) अंकुर (सूच्य वस्तु) नृत्त (अंगहार एवं करणों से प्रदर्शित) युक्त होता है। सर्वप्रथम अङ्गाभिनय में मस्तकाभिनय तेरह भेद से युक्त है।

मस्तकाभिनय– शिर की तेरह मुद्राएं है। 1. आकम्पित, 2. कम्पित, 3. धुत 4. विद्युत, 5. परिवाहित, 6. आधृत, 7. अवधूत, 8. अञ्चित, 9. निहञ्चित 10. परावृत्त, 11. उत्क्षिप्त, 12. अधोगत, 13. लोलित–

---

1. नाट्य शास्त्र द्वितीय भाग अध्याय 8 / गद्य खण्ड पृ०
2. नाट्य शास्त्र द्वितीय खण्ड 8 / 17–18

आकम्पित– आकम्पित सिर में ऊपर नीचे धीरे–धीरे सिर को हिलाते है। यदि अनेक बार द्रुत गति से हिलाया जाए तो कम्पित सिर हो जाएगा। यह इशारा करने, उपदेश देने (उपालम्भ) प्रश्न करने, दैनिक सम्भाषण एवं आज्ञा प्रदान करने में आकम्पित सिर का प्रयोग करते है–

संज्ञोपलम्भप्रश्नेषु स्वभावाभाषणे तथा
निर्देशावाहने चैव भवेदाकम्पितं शिरः।। [2]

कम्पित– वहीं बार–बार तेजी से शिर हिलाने को कम्पित कहते हैं यह क्रोध वितर्क, विज्ञान (किसी वस्तु की विशेषता) समझाने में, प्रतिज्ञा, तर्जन, अतिशय प्रश्न करने में व्याधि में प्रयुक्त होता है

रोषे वितर्क विज्ञाने प्रतिज्ञानेऽथ तर्जने
प्रश्नातिशयवाक्येषु शिरः कम्पितमिष्यते ।। [3]

धुत विधुत– धीरे–धीरे शिर हिलाना धुत एवं तीव्रता से हिलाना विधुत है। अनिच्छा विषाद विस्मय विश्वास पार्श्वविलोकन शून्यता एवं प्रतिषेध में धुत शिर का प्रयोग करें–

अनीप्सिते विषादे च विस्मये प्रत्यये तथा
पार्श्वविलोकने शून्य प्रतिषेधे धुतं शिरः।।[4]

शीत ग्रस्त, भयभीत, त्रास, ज्वर, प्रथम मद्यपान में, स्थिति में विधुत शिर की परिकल्पना करें ।[5]

परिवाहित/आधूत– दोनों छोरों पर सिर को घुमाना परिवाहित है। वहीं यह एक बार तिरछा घुमाया जाए तो आधूत है। परिवाहित मस्तकाभिनय से साधन विस्मय, प्रसन्नता, स्मरण, क्रोध, विचार, भावगोपन, लीला का अभिनय होना चाहिए–

साधने विस्मये हर्षे स्मृते चामर्षिते तथा।
विचारे विह्वते चैव लीलायां परिवाहितम्।। [6]

गर्व की भावना से, पर्व विशेष पर ऊपर देखना, आत्मसम्मान बतलाने में आधूत अभिनय करें।[7]

अवधूत/अञ्चित – यदि मस्तक को नीचे एक बार हिलाया जाए तो अवधूत कहलाता है इसका योजना, सन्देश देने, आवाहन करने, अलुप्त होने एवं किसी के समीप आने में प्रयोग किया जाना चाहिए–

यदधः सकृदाक्षिप्तमवधूतन्तु तच्छिरः।
सन्देशावाहना लोप संज्ञादिषु तदिष्यते।। [8]

यदि ग्रीवा को एक ओर झुका लिया जाए तो अंचित सिर कहलाएगा। यह मुद्रा योजना, व्याधि ग्रस्तता, मूर्च्छा, चिन्ता एवं दुःख प्रदर्शन में बनानी चाहिए।। [9]

निहञ्चित परावृत्त– दोनों कन्धे ऊपर की ओर फैला कर गर्दन को एक ओर सिकोड़ लेने पर निहञ्चित मस्तक मुद्रा बनेगी। इसमें स्त्रियों द्वारा गर्व विलास, विब्बोक, ललित, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, स्तम्भ और मान का प्रदर्शन किया जाता है। यदि चेहरे को गोल घुमाया जाए तो परावृत्ता कहलाएगी इससे मुँह मोड़ना, पीछे देखना आदि का अभिनय होता है। [10]

उत्क्षिप्त अधोगत– मस्तक ऊपर की ओर देखते हुए स्थित हो तो उसे उत्क्षिप्त कहेंगे इससे ऊँची वस्तु देखना या बताना दिव्य अस्त्र की गति प्रदर्शित की जाता है–

उत्क्षिप्तञ्चापि विज्ञेय उन्मुखावस्थितं शिरः
प्रांशु दिव्यास्रयोगेषु स्यादुत्क्षिप्तं प्रयोगतः।। [11]

चेहरे को सिर सहित नीचे झुका लेना अधोगत कहलाता है इस योजना में लज्जा प्रणाम करना दुःख आदि को प्रकट करते है। [12]

लोलित– मस्तक को चारों ओर घुमाना लोलित कहलाता है इससे मूर्च्छा व्याधि, मद, आवेश, भूत आदि ग्रह आविष्ट दिखाया जाता है। [13]

इसके अतिरिक्त लोक प्रकृति के अनुसार मस्तकाभिनय के अन्य भेद भी सम्भव है।

नाट्य का मुख छः उपाङ्गों से युक्त है ये उपाङ्ग है– नेत्र, नासिका, और कपोल और ओष्ठ । इनमें नेत्रों से नट (36) छत्तीस प्रकार से अभिनय कर सकता है– कान्ता, भयानका, हास्या,करूणा, अद्‌भूता, रौद्री, वीरा और बीभत्सा ये रस दृष्टियाँ है। स्निग्धा, हृष्टा है। [14] संचारी भाव

से युक्त दृष्टि शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जान्विता, ग्लाना, शंकिता, विषण्ण मुकुला कुंचिता, अभितप्ता, जिह्मा, ललिता, वितर्किता,अर्धमुकुलिता, विभ्रान्ता विप्लुता आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता, मदिरा [15] इन दृष्टियों का प्रयोग रस एवं भावों के आश्रित कर्म एवं प्रयोगों के अनुसार करना चाहिए–

कान्ता– अतिशय स्नेह से आविष्ट व्यक्ति भौंह एवं कटाक्ष से देखें तो हर्ष एवं प्रसाद (मनोविनोद) से उद्‌भूत दृष्टिकान्ता कहलाती है।

हर्षप्रसाद जनितो कान्त्यार्थे समन्मथा।
सभ्रूक्षेपकटाक्षो च श्रङ्गारे दृष्टिरिच्यते।। [16]

भयानका– जिसमें पलकों को ऊपर उठाकर स्थिर कर दिया जाए और पुतलियों को ऊपर चमकाते हुए गोल घुमाव किया जाए तो यह भयानका दृष्टि है। यह भय की अतिशयता को प्रकट करती है–

प्रोद्‌वृत्त निस्तब्धपुरा स्फुरद्‌वृत्त तारका।
दृष्टि भयानकात्यर्थे भीता ज्ञेया भयानके।। [17]

हास्या– दोनों पलकें क्रमशः सिकुड़ी हुई पुतलियाँ कुछ खुली घुमती हुई रखी जाती हैं। गुदगुदाने या छूकर हंसाने के प्रदर्शन के अवसर पर इन्हें करते है–

क्रमादाकुञ्चित पुटा सविभ्रान्ताल्पतारका
हास्या दृष्टिस्तु कर्तव्या कुहकाभिनयं प्रति।। [18]

करूणा– दोनों पलकें नीचे की ओर, क्रोध के कारण पुतलियाँ धीमी हों आँखों से आँसू ढलकते हों तथा नासिका की नोक पर दृष्टि स्थित हो तो उसे करूणा दृष्टि समझना चाहिए। [19]

अद्‌भुता– जिस दृष्टि में बरौनियाँ नोक पर कुछ सिकुड़ी, पुतलियाँ आश्चर्य से ऊपर की ओर उठी हुई रहें और आँखें खिली हुई दशा को सुन्दरता पूर्वक प्रदर्शित करें, तो उसे अद्‌भुता दृष्टि कहेंगे–

या त्वाकुञ्चित पक्ष्माग्रा साश्चर्योद्‌वृत्त तारका।
सौम्या विकसितान्ता च साद्भुता दृष्टिरद्भुते।। [20]

रौद्री– जिसमें पुतलियाँ रूखी, लाल एवं घूमने वाली हो पलकें स्थिर एवं भृकुटी टेढ़ी हो ऐसी दृष्टि रौद्री कहलाती है–

क्रूरा रूक्षारूणोद्वृत्ता निस्तब्ध पुटतारका।
भ्रूकुटी कुटिला दृष्टिः रौद्री रौद्ररस स्मृता।। [21]

वीरा– चमकीली फैली हुई क्षुब्ध, गम्भीर पुतलियॉ बीच में स्थित हो तथा जिसका मध्यभाग खिला हुआ हो तो वीरा दृष्टि कहलाती है–

दीप्ता विकसिता क्षुब्धा गम्भीरा समतारका
उत्फुल्लमध्यता दृष्टिस्तु वीरा वीररसाश्रया।। [22]

बीभत्सा– पलकों से नेत्र कोण ढंक लिए गए हों, पुतलियॉ घुमाव के कारण दबी या विघ्नित हो, बरौनियॉ एक दूसरे से मिली हुई और स्थिर हों तो यह बीभत्सा दृष्टि कहलाती है–

निकुञ्चित पुटापाङ्गा घूर्णोपप्लुततारका।
संश्लिष्टस्थिरपक्ष्मा च वीभत्सा दृष्टिरिष्यते ।। [23]

शान्ता– नासिका के अग्र भाग में स्थित अपलक नीचे की ओर देखने वाली दृष्टि आकेकर (मुद्रा) में रहे तो उसे शान्ता दृष्टि जानो।

नासाग्रासक्तानिमिषा तथाधोभागचारिणी।
आकेकरपुरा चैवशान्ता दृष्टिर्भवेदसौ।। [24]

स्निग्धा– जिसका मध्य भाग फैला हुआ एवं माधुर्यमयी है। पुतलियॉ स्थिर एवं आनन्दजन्य अश्रुओं से परिपूर्ण हो ऐसी दृष्टि स्निग्धा कहलाती है यह रतिभाव प्रयोग के लिए को जाती है। [25]

हृष्टा– चंचल दृष्टि पलकें थोड़ी लगती हुई जिससे पुतली पूर्णतः न दिखे पलकें कुछ झुकी हुई हो, गिरती हुई नहीं एवं थोड़ी संकुचित हो, तो इसे हृष्टा दृष्टि कहते है। यह हास नामक स्थायी भाव में प्रयुक्त होती है। [26]

दीना– ऊपरी पलक झुकी हुई पुतली थोड़ी ढकी हुई एवं चलन बहुत मन्द हो तो उसे दीना दृष्टि जानें इसका प्रयोग शोक नामक स्थायी भाव में होता है। [27]

क्रुद्धा– दृष्टि रूखी पलकें ऊपर की ओर गतिहीन पुतलियॉ ऊपर की ओर घूमने वाली एवं स्थिर भ्रुकुटी टेढ़ी तो उसे क्रुद्धा दृष्टि जानें। यह क्रोध स्थायी भाव में प्रयुक्त होती है। [28]

दृप्ता– जिस दृष्टि में ऑखे स्थिर एवं पूरी तरह फैली हो पुतलियॉ स्तब्ध हो, जिससे सत्व भाव प्रकट हो वह दृप्ता दृष्टि है। इस का प्रयोग उत्साह भाव में किया जाता है।[29]

भयान्विता– जिसमें आखों के पुट पूरी तरह फैले हों, पुतलियॉ भय से कॉप रही, हो और बीच के स्थान में थोड़ी हटकर रखी जाए, तो वह भयान्विता दृष्टि जानों इसका प्रयोग भय नामक स्थायी भाव में किया जाता है।[30]

जुगुप्सिता– पलकें सिकुड़ी हुई, पर आपस में न मिलती हों, पुतलियॉ चलायमान और लक्ष्य से लौटने वाली रखी जाए, उसे जुगुप्सिता दृष्टि जाने, यह जुगुप्सा भाव में प्रयुक्त है।[31]

विस्मिता– जो बराबर खुली हुई पुतलियॉ, जिसमें ऊपर की ओर घुमाव लें, पलकें स्थिर हों, तो विस्मिता दृष्टि जानें, यह विस्मय स्थायी भाव में प्रमुख हो।[32]

संचारी भावों के प्रकाशन में निम्न दृष्टियॉ प्रयुक्त होती है–

शून्या– क्षीर्ण एवं स्थिर दृष्टि, जिसमें पुतलियॉ एवं पलकें सम हो और अपने स्थान पर ही लौटने वाली होकर बाह्य पदार्थ को ग्रहण न करें तो वह शून्या दृष्टि है।[33] इसका प्रयोग निर्वेद में किया जाए।

मलिना– बरौनियॉ घूमती हुई। पलकें अतिशय सिकुड़ी न हों, नेत्र कोण मलिन हों, जिसमें पुतली न चले, वह मलिना दृष्टि कहलाती है।[34]

श्रान्ता– परिश्रम के कारण पलकें म्लान हों, ऑखों के कोने सिकुडे हों दृष्टि निर्बल हों, पुतलियॉ नीचें झुकी हों, तो उसे श्रान्ता दृष्टि कहते है।[35]

ग्लाना– भौंहे पलकें बरौनियॉ म्लान हों, धीरे–धीरे घूमती पुतलियॉ श्रम के कारण पलकों में ढंकी रहें, तो उसे ग्लाना दृष्टि जानें।[36]

शंकिता– जहॉ दृष्टि कभी हिलती, कभी स्थिर, कभी ऊपर, कभी तिरछी कभी विस्तृत फैली हुई हो, जो कभी गूढ हो जाए, जिसमें पुतलियॉ भयभीत सी लगें उसे शंकिता दृष्टि जानें।[37]

विषदिनी– जो दृष्टि व्यग्र हो, जिसमें विषाद के कारण पलकें फैली हो, नेत्रों के कोने न खुलते न बन्द होते हों, पुतलियाँ कुछ स्थिर हों, तो उसे विषादिनी कहते है–।[38]

मुकुला– जिसमें बरौनियाँ कुछ–कुछ घूमती तथा मिली हुई रहें ऊपरी पलकें कलियाँ जैसी अधखुली हों, पुतलियाँ हर्ष के कारण फैली हों, तो उसे मुकुला दृष्टि जाना–[39]

कुञ्चिता– सिकुडी पलकों के कारण जिसकी बरौनियाँ की नोकें झुकी हुई हो और पुतलियाँ भी जिसमें सिकुड़ी हुई रहें, तो उसे कुञ्चिता दृष्टि जाने[40]

अभितप्ता– पलकों के हिलने से, जिससे पुतलियाँ धीरे–धीरे घूमती रहती हो तथा जो अतिशय दुर्गति और विघ्न को स्वतः प्रदर्शित करती हो ऐसी दृष्टि अभितप्ता है।[41]

जिह्मा– जिसमें पलकें झुकी हुई, थोड़ी सिकुड़ी, तिरछी चितवन पुतलियाँ गूढ़ दृष्टि भी गूढ़, तो उसे जिह्मा जाने–[42]

ललिता– जिसका अवलोकन कार्य मधुरता लिए हो, पलकों के कोने सिकुड़े हुए, दृष्टि खिलती हुई, भौंहो के संचालन से कामजन्य विकारों की अभिव्यक्ति हो, तो उसे ललिता दृष्टि जानें–[43]

वितर्किता– तर्क के कारण पलकें ऊपर उठी हुई और पुतलियाँ खिली हुई तथा नीचे हिलने वाली हो तो उसे वितर्किता दृष्टि जाने[44]

अर्धमुकुलिता– जिसमें बरौनियाँ आधी खुली हो, पलकें भी आधी खुली हो पुतलियाँ पूर्णरूप में खिली हुई एवं नीचे की ओर घूमती हुई हो, तो उसे अर्धमुकुला दृष्टि जाने

विभ्रान्ता– जिसमें पुतलियाँ तथा पलकें घुमती हुई हों आँखे पूर्ण रूप से खिली हो, तो वह विभ्रान्ता दृष्टि है[45]

विप्लुता– दोनों पलकों फैलकर स्थिर हो जाए, पुतलियाँ विघ्न के कारण फड़कती रहें, तो वह विभ्रान्ता दृष्टि है–[46]

आकेकरा– जिसमें पलकों और ऑखों के कोने थोड़े सिकुड़े हुए एक दूसरे से मिले हुए और आधे खुले हुए हो और पुतलियॉ बार–बार गोल घुमाव लें तो वह आकेकरा दृष्टि है–[47]

विकोशा– जिसमें दोनों पलकें फैली हुई खिली हुई तथा न गिरने वाली हो और पुतलियॉ अव्यवस्थित गतिशील हो तो उसे विकोशा दृष्टि जाने[48]

त्रस्ता– त्रास के कारण पलकें उठी हुई पुतलियॉ ऊपर की ओर घूमती रहती हो, जिसका खिला हुआ मध्य भाग रहे तो उसे त्रस्ता दृष्टि मानें[49]

तरूणमदा– जिसमें दृष्टि का मध्यभाग घूमने वाला कोने पतले और ऑखे झुकी हुई रहें और ऑखो कान तक पूर्णखिली हो तो उसे मदिराया तरूणमदा दृष्टि जानें–[50]

मध्यमद– इसमें पलकें थोड़ी सिकुड़ी पुतलियॉ और बरौनियॉ क्रमहीन दशा में हिलती रहें तो मध्यमदा दृष्टि है।[51]

अधममदा– पलकें गिरने लगती है या एकदम रूक जाती है पुतलियॉ थोड़ी मात्रा में दिखने लगती है और नीचे घूमती है[52]

इन छत्तीस प्रकार की दृष्टियों के माध्यम से अभिनय में विभिन्न भावों का प्रकाशन होता है।

चिन्ता में शून्या एवं अभितप्ता दृष्टि का प्रदर्शन करें। निर्वेद तथा वैवर्ण्य में मलिना दृष्टि की योजना रखे।[53]

श्रम एवं स्वेद में श्रान्ता दृष्टि, लज्जा में ललिता अपस्मार एवं व्याधि में तथा ग्लानि में ग्लाना दृष्टि का अभिनय करना चाहिए–[54]

शंका में शंकिता दृष्टि विषाद में विषादिनी, निद्रा एवं स्वप्न तथा प्रसन्नता में मुकुला दृष्टि का प्रयोग करे[55] असूया, अनिष्ट तथा कष्ट से अनवलोकनीय वस्तु और ऑखों की पीड़ा में कुञ्चिता दृष्टि, निर्वेद, आकस्मिक चोट तथा अति सन्ताप में अभितप्ता दृष्टि का विधान करें[56] असूया जड़ता और आलस्य में जिह्म धैर्य तथा हर्ष में ललिता, तर्क में वितर्किता

दृष्टि का प्रदर्शन करें।[57] मधुर गन्ध स्पर्श से होने वाले आनन्द में अर्धमुकुला दृष्टि और आवेग सम्भ्रम तथा विभ्रम में विभ्रान्ता की योजना करें[58] चपलता उन्माद दुःख मानसिक व्यथा मरण में विलुप्ता दृष्टि का, तथा दूरी के कारण न दिखायी देने वाले पदार्थ वियोग तथा प्रोक्षण में आकेकरा, दृष्टि योजना करे।[59] विबोध, मति, गर्व, अमर्ष, उग्रता तथा मति में विकोशिता दृष्टि एवं त्रास में त्रस्ता मद में मदिरा की योजना करें[60]

पुतली संचालन– अभिनय में ताराकर्म नवविध होता है–

1. भ्रमण, 2. वलन, 3. पात, 4. चलन, 5. सम्प्रवेशन, 6. विवर्तन, 7. समुद्वृत्त, 8. निष्क्राम, 9. प्राकृत।

पलकों में पुतलियों के गोल घुमाव को 'भ्रमण' तिरछा गमन को 'वलन' ऊपर से नीचे आने के 'पात' दोनों दिशाओं में घुमाने को 'चलन' पुतली को अन्दर खिंचने को सम्प्रवेशन कटाक्ष पूर्ण चितवन को 'विवर्तन' पुतली में फैलाव लेते हुए ऊपर उठाना समुद्वृत्त बाहर की ओर पुतली को धकेलना निष्क्राम एवं सहज गति को प्राकृत कहते है।[61]

वीर व रौद्र रस प्रयोग में भ्रमण वलन उद्वृत एवं निष्क्राम पुतली संचालन करना चाहिए। भयानक रस में निष्क्राम एवं वलन का, हास्य रस में प्रवेश का इसका प्रयोग, वीभत्स रस में भी करना चाहिए। करूण रस में पातन नामक तारा कर्म करें। अद्भुत रस में निष्क्राम। अवशिष्ट सभी भावों में प्राकृत की योजना करनी चाहिए।[62]

अवलोकन प्रकार– नेत्राभिनय में दर्शन (अवलोकन) के आठ भेद कहे गए है– 1. सम, 2. साची, 3. अनुवृत्त, 4. आलोकित, 5. विलोकित, 6. प्रलोकित 7. उल्लोकित, 8. अवलोकित।

जहॉ पुतली समान एवं सौम्य भाव सहित हो तो उसे सम अवलोकन कहेंगे जिसमें पुतली पलकों के अन्दर दबकर तिरछी हो जाए तो उस दर्शन का नाम साची है। चारों ओर किसी को ध्यान पूर्वक देखने पर अनुवृत्त दर्शन

सहसा किसी वस्तु को देखने पर आलोकित दर्शन का प्रयोग करें। पीछे की ओर देखने पर विलोकित तथा नीचे भूमि की ओर देखने पर अवलोकित अवलोकन का प्रयोग करना चाहिए।[63]

पलक कर्म– उपाङ्ग के अन्तर्गत पलकों का भी स्थान है। यह पलकों का कर्म नाट्य कला में पुटकर्म के नाम से जाना जाता है। पुटकर्म 9 प्रकार का है।– 1. उन्मेष, 2. निमेष, 3. प्रसृत, 4. आकुञ्चित, 5. सम, 6. विवर्तित, 7. स्फुरित, 8. पिहित, 9. विताडित।

पलकें खोलने (अलग) का नाम उन्मेष है पलक गिरना का नाम निमेष है, पलक विस्तार का नाम प्रसृत है, पलक संकुचन का नाम कुञ्चित हैं पलकों की स्वाभाविक अवस्था का नाम सम है। पलकों को ऊपर उठाने का नाम विवर्तित है। पलकों का स्पंदन स्फुरित कहलाता है। पलकों का बन्द करना पिहित तथा अचानक पलकें पटपटाना विताडित कहलाता है।[64]

क्रोध में निमेष उन्मेष विवर्तन अवलोकन करें। अद्‌भुत वीर हर्ष में प्रसृत पुटकर्म करें। कुत्सित पदार्थ देखने में, गन्ध रस स्पर्श में कुञ्चित पुट कर्म करें। श्रंगार में सम, ईर्ष्या में स्फुरित, निद्रा, मूर्च्छा, वायु, उष्णता, धुआँ, वर्षा, काजल लगाना, पीड़ा तथा नेत्र रोग में पिहित पुट कर्म करना चाहिए। अचानक चोट में विताडित पुट कर्म करे।

भ्रूकर्म– उपाङ्ग के अन्तर्गत भ्रुकुटी का अपना स्थान है इनसे सात प्रकार से कार्य अभिनय किया जाता है। 1. उत्क्षेप, 2. पातन, 3. भ्रुकुटी, 4. चतुर 5. कुञ्चित, 6. रेचित, 7. सहज।

भ्रुकुटी को क्रमशः एक साथ ऊपर चढ़ाना उत्क्षेप है उन्हें क्रम से नीचे उतारना पातन है। दोनों भ्रूमूल को एक साथ ऊपर चढाना भ्रुकुटी है। दोनों भ्रुकुटियों में चलन के साथ मधुरता व विस्तार दिखाना चतुर है। भ्रू को धीरे–धीरे एक साथ पास झुकाना कुंचित हैं। भ्रू को लालित्य पूर्ण ढंग से ऊपर उठाना रेचित है। भ्रू की स्वाभाविक दशा सहज कहलाती है।[65]

क्रोध, वितर्क, हेला, लीला तथा सहज अवलोकन में सुनने की दशा

में एक भ्रू उठाना यह उत्क्षेप है। असूया जुगुप्सा हास तथा सुगन्ध सूंघने में पातन नामक भ्रू प्रयोग करे। क्रोध का विषय, दीप्त, प्रदेश में भ्रुकुटी की योजना की जानी चाहिए। श्रंगार, ललित, सौम्य, वस्तु तथा स्पर्श और प्रबोध में चतुर भ्रू की योजना रखे।[66]

अनेक अवस्थाओं से युक्त स्त्री एवं पुरुषों के संलाप में मोट्टायित कुट्टमित, किलकिञ्चित में कुंचित भ्रुकुटी प्रयोग करें। नृत्य में रेचित अन्य सामान्य भाव में सहज का प्रयोग करना चाहिए।[67]

नासिका कर्म– उपाङ्ग में नासिका का भी स्थान है। नासा के छः प्रकार के कर्म नाट्यशास्त्र में बतलाए गए है। 1. नता, 2. मन्दा, 3. विकृष्टा 4. सोच्छवासा, 5. विकूणिता, 6. स्वाभाविका। यदि नासापुट बारबार चपटे हो जाते हो तो उसे नता कहते है। यदि नासा पुट स्थिर रहें तो मन्दा कहलाते है। यदि नासापुट फूलें रहें तो विकृष्टा श्वास खींचने से नासा पुट खिचे से लगे तो सोच्छवासा यदि, सिकुडे हो तो विकूणिता सहज भाव से हो तो समा नासापुट कहलाएंगे।[68]

स्त्रियों को मनाने में, मन्द कम्पन्न युक्त रहने पर नता नासा कर्म करें। रोदन के रूकने पर मन्द हो जाने पर सॉस लेने पर नता नासा कर्म करें। निर्वेद, औत्सुक्य, चिन्ता, शोक में मन्दा नासा कर्म दिखाना चाहिए। तीव्र गन्ध श्वास, रोष, भय तथा पीड़ा मे विकृष्टा, मीठी सुगन्ध, दीर्घ श्वास, उसॉस में सोच्छवासा, जुगुप्सा, असूया आदि में विकूणिता, हास्य जुगुप्सा में भी विकुणिता शेष में समा नासा कर्म करना चाहिए।[69]

कपोल कर्म– मुख रूप अंग के उपाङ्ग कपोल भी है। इसने छः कर्म नाट्य शास्त्र में बतलाए गए हैं– 1. क्षाम, 2. फुल्ल, 3. पूर्ण, 4. कम्पित, 5. कुंचित, 6. सम। अवनत बैठे हुए कपोल क्षाम, फूले हुए कपोल फुल्ल (विकसित) उन्नत एंव ऊँचें उठे हुए कपोल पूर्ण, कॉपते एवं घूमते हुए कपोल कम्पित, सिकुडे हुए कपोल कुंचित स्वाभाविक दशा में सम कहलाते है।[70]

दुःख में क्षाम, हर्ष में फुल्ल, उत्साह गर्व में पूर्ण, रोष हर्ष में कम्पित रोमांच स्पर्श शीत भय तथा ज्वर में कुंचित शेष भावों में सम कपोल का प्रदर्शन करें।[71]

अधरोष्ठ कर्म– अधर भी मुख संबन्धी उपाङ्ग है। जिसका प्रयोग अभिनय के लिए किया जाता है। अभिनय में षड्विध कर्म का प्रचलन है–

1. विवर्तन, 2. कंपन, 3. विसर्ग, 4. विनिगूहन, 5. सन्दष्टक, 6. समुद्गक।

नीचे के ओठ का कॉपना विवर्तन है। ओठ का घूमना कम्पन है। ओठ का बाहर निकलना 'विसर्ग' है। ओंठ का अन्दर जाना 'विनिगूहन' है। ओंठ का दॉतों से दबाना 'सन्दष्टक' है। ओंठो का बाहर की ओर ऊँचा करना 'समुद्गक' है।[72]

असूया, वेदना, लज्जा, अनादर एवं हास्य में 'विवर्तन' कर्म करें। वेदना, शीत, भय, क्रोध, वेग आदि में कम्पन कर्म करें। विलास, विव्बोक रंजन में 'विसर्ग', आयास में 'विनिगूहन', क्रोध कार्य में 'सन्दष्टक' अनुकम्पा, अभिनन्दन चुम्बन में समुद्गक ओष्ठ योजना करें।[73]

चिबुक कर्म– उपाङ्ग अभिनय में चिबुक (हनु) का अपना स्थान है। इसके सात प्रकार के कर्म होते है– 1. कुट्टन, 2. खण्डन, 3. छिन्न, 4. चुक्कित 5. लेहित, 6. सम, 7. दष्ट। दन्त संचालन के अनुसार ही चिबुक के लक्षण बतलाए जाते है। दॉतों के घषर्ण से (फड़कने) कुट्टन कर्म, दॉतो को परस्पर ऊपर तक हटा लेने पर चुक्कित कर्म, जीभ से दॉत चाटने पर लेहित, दॉतो को थोड़ा मिलाने पर सम तथा दॉतों से ओठ दबाने पर 'दष्ट' नामक चिबुक कर्म होता है।[74]

भय, शीत, व्याधि तथा ज्वर में कुट्टन, जप, अध्ययन, संलाप तथा खाना खाने में खण्डन, व्याधि भय, शीत, व्यायाम, रूदित तथा मृत में छिन्न, चुम्बन में चुक्कित, चॉटने कर्म में, चंचलता में, लेहन, स्वाभाविक चेष्टा में सम तथा क्रोध प्रदर्शन में 'संन्दष्ट' का अभिनय करना चाहिए।[75]

मुखज कर्म– मुख के छः कर्म अभिनय में माने गए हैं 1. विनिवृत्त,

2. विधूत, 3. निर्भुग्न, 4. भुग्न, 5. विवर्त, 6. उद्वाही।

सीधा खुला मुख 'विनिवृत्त' तिरछा खुला मुख 'विधूत' नीचे झुका कर खुला मुख 'निर्भुग्न' कुछ खुला हुआ मुख 'भुग्न' ओंठो से लगा हुआ मुख 'विवर्त' तथा ऊपर उठा हुआ मुख उद्वाही कहलाता है।[76]

स्त्री जन्य असूया, ईर्ष्या, कोप, अवज्ञा तथा विहृत आदि भावों में 'विनिवृत्त' निवारण तथा निषेध कथन में, 'विधूत' मुख गम्भीर अवलोकन पर, 'निर्भुग्न' मुख लज्जित, निर्वेद, औत्सुक्य, चिन्ता, विनय, विचार में, 'भुग्न' मुख तथा संन्यासियों में सम मुख का अभिनय किया जाना चाहिए। शोक भय आदि में विवृत मुख स्त्री क्रीड़ा गर्व अनादर में क्रोध में उद्वाही मुख योजना करनी चाहिए–[77]

मुख योजना में मुख राग चार प्रकार का है– 1. स्वाभाविक, 2. प्रसन्न 3. रक्त, 4. श्याम। स्वाभाविक मुखराग में सहज अभिनय तथा मध्यस्थ भाव, प्रसन्न मुख राग में, अद्‍भुत, हास्य, श्रृंगार की योजना, रक्तमुख राग वीर, रौद्र, मद की योजना रखनी चाहिए। बिना मुखराग के अभिनय शोभा नहीं देता, और मुख राग से युक्त हो चन्द्र युक्त राग के जैसा अभिनय द्विगुणित शोभा सम्पन्न हो जाता है।

ग्रीवा कर्म– अभिनय में ग्रीवा के 9 कर्म कहे गए है– 1. समा, 2. नता 3. उन्नता, 4. त्र्यस्रा, 5. रेचिता, 6. कुंचिता, 7. अंचिता, 8. वलिता 9. विवृत्ता–[78]

ग्रीवा की सहज गति 'समा' है। इसका प्रयोग ध्यान, सहज, भाव, जप कार्य में करना चाहिए। झुकी हुई गर्दन नता है। इसका प्रयोग अलंकार धारण करने में किसी को कण्ठ से सहारा देने में करना चाहिए। ऊपर उठी ग्रीवा उन्नता है यह ऊपर देखने के भाव मे प्रयुक्त होती है। ग्रीवा एक ओर मोड़ी जाए तो त्र्यस्रा कहलाती है। यह भार ढोने, दुःख प्रदर्शन करने में प्रयुक्त होती है। ग्रीवा कँपाते हुए या घूमते हुए रखी जाए तो रेचिता कहलाती है, यह भाव मन्थन नृत्त मे प्रयुक्त होती है। मस्तक, सहित गर्दन

नीचे झुका ली जाए तो यह कुञ्चित है यह भार युक्त तथा बचाव आदि में प्रयुक्त होती है। ग्रीवा को मस्तक सहित पीछे मोड़ा जाए तो यह अंचिता कहलाती है। यह फाँसी पर लटकने, वालों को खींचने तथा ऊपर देखने में अभिनीत होती है। ग्रीवा सामने रहे तो विवृत्त कहलाती है। यह प्रस्थान में दिखायी जाती है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में शाखा व उपाङ्ग के कर्म प्रदर्शित किए गए है।

1. नाट्यशास्त्र 8/13
2. नाट्यशास्त्र 8/20
3. नाट्यशास्त्र 8/21
4. नाट्यशास्त्र 8/23
5. नाट्यशास्त्र 8/24
6. नाट्यशास्त्र 8/25
7. नाट्यशास्त्र 8/26
8. नाट्यशास्त्र 8/28
9. नाट्यशास्त्र 8/29
10. नाट्यशास्त्र 8/32
11. नाट्यशास्त्र 8/33
12. नाट्यशास्त्र 8/34
13. नाट्यशास्त्र 8/35
14. नाट्यशास्त्र 8/39
15. नाट्यशास्त्र 8/40–42
16. नाट्यशास्त्र 8/44
17. नाट्यशास्त्र 8/45
18. नाट्यशास्त्र 8/46
19. नाट्यशास्त्र 8/47
20. नाट्यशास्त्र 8/48
21. नाट्यशास्त्र 8/49
22. नाट्यशास्त्र 8/50
23. नाट्यशास्त्र 8/51
24. नाट्यशास्त्र 8/52
25. नाट्यशास्त्र 8/54
26. नाट्यशास्त्र 8/55
27. नाट्यशास्त्र 8/56
28. नाट्यशास्त्र 8/57
29. नाट्यशास्त्र 8/57
30. नाट्यशास्त्र 8/58
31. नाट्यशास्त्र 8/59
32. नाट्यशास्त्र 8/60
33. नाट्यशास्त्र 8/62
34. नाट्यशास्त्र 8/63
35. नाट्यशास्त्र 8/63
36. नाट्यशास्त्र 8/66
37. नाट्यशास्त्र 8/67
38. नाट्यशास्त्र 8/68
39. नाट्यशास्त्र 8/69'
40. नाट्यशास्त्र 8/70
41. नाट्यशास्त्र 8/71
42. नाट्यशास्त्र 8/72
43. नाट्यशास्त्र 8/73
44. नाट्यशास्त्र 8/74
45. नाट्यशास्त्र 8/76
46. नाट्यशास्त्र 8/77

47. नाट्यशास्त्र 8/78
48. नाट्यशास्त्र 8/79
49. नाट्यशास्त्र 8/80
50. नाट्यशास्त्र 8/81
51. नाट्यशास्त्र 8/82
52. नाट्यशास्त्र 8/83
53. नाट्यशास्त्र 8/86
54. नाट्यशास्त्र 8/87
55. नाट्यशास्त्र 8/88
56. नाट्यशास्त्र 8/89
57. नाट्यशास्त्र 8/90
58. नाट्यशास्त्र 8/91
59. नाट्यशास्त्र 8/92
60. नाट्यशास्त्र 8/93
61. नाट्यशास्त्र 8/96–99
62. नाट्यशास्त्र 8/100–103
63. नाट्यशास्त्र 8/104–108
64. नाट्यशास्त्र 8/110–112
65. नाट्यशास्त्र 8/118–121
66. नाट्यशास्त्र 8/122–125
67. नाट्यशास्त्र 8/126–127
68. नाट्यशास्त्र 8/128–130
69. नाट्यशास्त्र 8/131–133
70. नाट्यशास्त्र 8/134–136
71. नाट्यशास्त्र 8/136–138
72. नाट्यशास्त्र 8/138–141
73. नाट्यशास्त्र 8/142–144
74. नाट्यशास्त्र 8/145–148
75. नाट्यशास्त्र 8/148–150
76. नाट्यशास्त्र 8/151–153
77. नाट्यशास्त्र 8/154–159
78. नाट्यशास्त्र 8/168–169

भाषा विज्ञान एवं नाट्य शास्त्र

नाट्य कला एक प्रायोगिक कला है जिसमें चतुर्विध अभिनय के द्वारा नट स्वकला का प्रदर्शन करता है। यह प्रदर्शन चतुर्विध अभिनय पर आधारित है–[1] आहार्य, आङ्गिक, वाचिक एवं सात्विक।

भवेदभिनयो ऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।
आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहर्य्याः सात्विकस्तथा ।। [1]

अतः अभिनय में जितना महत्त्व आहार्य, आङ्गिक व सात्विक का है उतना ही महत्त्व वाचिक अभिनय का भी है। क्योंकि नाट्य एक दृश्यात्मक विधा है। इसमें दृश्येन्द्रिय के साथ–साथ श्रवणेन्द्रिय भी कार्य करती है। आङ्गिक, आहार्य सात्विक बिना वाचिक के अपने कार्य को पूर्ण प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत नहीं कर सकता। स्वयं भरतमुनि भी निर्देश करते है–

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मृता।

अङ्गनेपथ्य सत्वानि वाक्यार्थे व्यंजयन्ति हि।। [2]

वाचिक अभिनय में शब्द आठ प्रकार का होता है। नाम आख्यात, उपसर्ग तद्धित, समास, सन्धि, निपात और विभक्ति [3] भरतमुनि ने पाठ्य दो प्रकार का माना है। संस्कृत और प्राकृत जो स्वर संस्कार, संधि, समास, प्रत्ययान्त सुसंस्कृत पाठ्य है। वही जो संस्कार एवं गुणों से वर्जित है, नाना अवस्थात्मक प्राकृत पाठ्य होता है–

एतदेव विपर्यस्तं संस्कार गुणवर्जितम्
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम्।। [4]

जो पाठ्य संस्कार गुण आदि से रहित विभिन्न अवस्थान्तरों से युक्त प्राकृत नामक पाठ्य होता है। यह प्राकृत पाठ्य भी तीन प्रकार का हुआ करता है। 1. तत्सम शब्दमयी पाठ्य, 2. तद्भव शब्दमयी पाठ्य 3. देशी शब्द प्रयोग

त्रिविधं तच्च विज्ञेयं नाट्य योगे समासतः।
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमथापि च ।। [5]

संस्कृत के समान ही बहुत से शब्द जैसे के तैसे प्राकृत में भी प्रचलित हैं। जैसे– कमल, अमल, रेणु, तरंग, लाल, सलिल आदि।

किन्तु जिन शब्दों में स्वर या वर्ण परिवर्तन के कारण पदों व वाक्यार्थो का समवेत स्वरूप परिवर्तित हो जाता है उन्हें विभ्रष्ट या अपभ्रष्ट शब्द मानना चाहिए। प्राकृत भाषा में ए औ अनुस्वार, विसर्ग वाले वर्ण प्रयुक्त नहीं होते तथा तीनों ष श स के स्थान पर सकार का प्रयोग होता है।

वहीं ख घ भ ध तथा म को 'ह' आदेश हो जाता है किन्तु अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता–

सघथधमां गुण हत्तं उर्वेति अत्थं अमुञ्चन्ता

ख घ भ ध माः पुनः हत्वमुपेयन्ति अर्थञ्चामुञ्च मानाः।।[6]

प्राकृतं में अर्धरेफ प्रयोग रहता है। जैसे मुख=मुह, मेघ=मेह, कथा=कहा वधू=वहू, प्रभूत=पहुऊ।

प्राकृत में ष वर्ण को छः आदेश हो जाता है जैसे षटपद=छतपद 'ट्र' को प्राकृत में 'ड' आदेश हो जाता है यथा भट= भड, कुटी=कुडी तट=तड, तथा श कार का सर्वत्र सकार आदेश प्राकृत में होता है।[7] विष=विस, शंका=संका। वहीं ड कार को लकार आदेश होता है।

वडवातडागतुल्यो भवतिडकारोऽपि च लकारः ।।[8]

जैसे वडवा= वलवा, तडाग=तलागा।

ध वर्ण को 'ढ'आदेश वहीं 'न' वर्ण को ण आदेश हो जाता है। आपान=आवाण। वहीं पकार का वकारादेश होता है। पकार को कठोर वर्ण फकारादेश भी प्राकृत में हो जाता है– परुसं=फरुसं

प्राकृत भाषा में औकार की ध्वनि को ओकार हो जाता है यह सब भाषा के प्रचलित रूप में परिवर्तन हैं।

वहीं भाषा में प्रयुक्त संयुक्ताक्षर में भी प्राकृत भाषा में परिवर्तन हो जाता है। जैसे श्च, प्स, त्स, थ्या के स्थान पर छ, भ्य, ध्य, ह्य के स्थान पर झ, ष्ट के स्थान पर ट्व, त्थ, ष्म के स्थान पर मह ष्ण क्ष्ण को वह और क्ष को आदेश होता है–

खप्सत्सथ्याः छ इति तथा भ्यह्यध्या भवन्ति तु झकारः

ष्टः ट्टः स्तः त्थः ष्मो म्ह क्ष्णो ण्हः ष्णोःष्हःक्षः सकार रूपोऽपि।।[9]

वही श्च के स्थान पर च्छ आदेश थ्य के स्थान च्छ आदेश भी प्राकृत में प्राप्त होता है। जैसे आश्चर्य=अच्छरियं: निश्चय णिच्छय, पथ्य=पच्छ।

तुभ्यं तुज्झं मह्यं मज्झं विन्ध्यश्च भवति विंज्झोति।
दष्टो दड्ढोत्तित तहा हस्तोऽपि च भवति हत्थेत्ति।। [10]

भ्यं के स्थान ज्झ, ह्य के स्थान पर ज्झ, ष्ट को ढ, स्त को त्थ होता है। जैसे तुभ्यं=तुज्झं, मह्यं= मज्झं, दष्ट=दृढ़, हस्त=हत्थ।

ग्रीष्म शब्द में ष्म के स्थान पर म्ह क्ष्ण के स्थान पर ण्ह ष्ण=ण्ह, र्य के स्थान पर ल्ल आदेश होता है।

ग्रीष्मो गिम्होत्ति तथा श्लक्ष्णं सह्वं सदा तु विज्ञेयम्।
उष्णं उण्हं यक्षो जक्खो पल्लंक भवति पर्यङ्कम्।। [11]

ग्रीष्म–गिम्ह, श्लक्ष्ण=सण्ह, उष्ण=उणअ, कृष्ण=कण्ह, पर्यक=पल्लंक।

वहीं ब्रह्मादि शब्दों में इसके विपरीत ब्रह्म–ब्रह्मा हो जाता है। बृहस्पति शब्द में प को फ हो जाता है। अतः अल्प प्राण ध्वनि महाप्राण में परिवर्तित हो जाती है। संयुक्ताक्षर ज्ञ के स्थान पर प्राकृत में ण्ह आदेश होता है। ष्म को यह आदेश है। यथा बृहस्पति=बुहप्फई, यज्ञ=जण्ह और भीष्म=भिम्ह।

विपरीतं हमयोगे ब्रह्मादौ स्यात् बृहस्पतौ फत्वम्।
यज्ञे भवति तु जण्णो–भीष्मो–भिम्होति विज्ञेयः।। [12]

वहीं रेफ के साथ संयुक्ताक्षर क को द्वित्व को जाता है। जैसे अर्क=अक्क शक्र=सक्क रूप प्राकृत भाषा में प्रचलित है।

उपरिगतोऽधस्ताद्वा भवेत्ककारादिकस्तु यो वर्णः
स हि संयोग विहीनः शुद्धः कार्यः प्रयोगेऽस्मिन्।। [13]

इस प्रकार प्राकृत भाषा में संयोग विहीन रूप से शब्दों का प्रयोग होता है। अतः नट को अपनी उच्चारणगत शुद्धि के लिए प्राकृत शब्दों में परिवर्तन को समझना पडेगा। नाटकों में पाठ्यान्तर्गत संस्कृत व प्राकृत प्रयोग की दृष्टि से अतिभाषा, आर्यभाषा, जाति भाषा एवं जात्यन्तरी भाषा में परिवर्तित हो जाती है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में संस्कृत से प्राकृत शब्द निर्माण की प्रक्रिया का जहाँ उल्लेख किया है। वही वर्णों में परिवर्तन की प्रक्रिया

का भी वर्णन किया है।

1. साहित्य दर्पण 6/9 पृ० 262
2. नाट्य शास्त्र 15/2
3. नाट्य शास्त्र 15/4 पृ० 325
4. नाट्य शास्त्र 18/2 पृ० 326
5. नाट्य शास्त्र 18/2 पृ० 328
6. नाट्य शास्त्र 18/7 पृ० 330
7. नाट्य शास्त्र 18/11 पृ० 330
8. नाट्य शास्त्र 18/12 पृ० 332
9. नाट्य शास्त्र 18/18 पृ० 333
10. नाट्य शास्त्र 18/20 पृ० 333
11. नाट्य शास्त्र 18/21 पृ० 334
12. नाट्य शास्त्र 18/22
13. नाट्य शास्त्र 18/23

पात्र एवं भाषा प्रयोग- नाट्य शास्त्रीय चिन्तन

भाषा के माध्यम से ही इतिवृत्त (कथा) अपने स्वरूप को प्रकट करती है। शब्द ही भावों की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम हैं। इसीलिए आचार्य दण्डी ने कहा है कि शब्द के आलोक से ही विश्व प्रकाशित है। यदि शब्द न हो तो सामान्य व्यवहार भी कठिन हो जाएगा।

श्रव्य काव्य एवं दृश्य काव्य में प्रयुक्त भाषा का विभाजन मुनि भरत में चार खण्ड एवं चार उपखण्डों में किया है। एक वह भाषा जो देव योनि द्वारा प्रयुक्त है अतिभाषा, वही राजाओं आदि सम्पन्न समाज में प्रयुक्त भाषा आर्य भाषा[2], जन साधारण एवं म्लेच्छों द्वारा प्रयुक्त होनी वाली भाषा को हम जाति भाषा [3] एवं अक्षर बोधरहित वनवासियों एवं पशुपालकादि की भाषा जात्यन्तरी भाषा मानी गई-

अथयाजात्यन्तरी भाषा ग्राम्यारण्यपशूद्भवा

नाना विहङ्गजा चैव नाट्य धर्मी प्रतिष्ठिता।। [4]

नाट्य में चतुर्विध नायकादि के द्वारा संस्कृत पाठ्य एवं आर्य भाषा की योजना रखी जाती है। किन्तु यदि राजेश्वर्य से च्युत होने पर दरिद्रता से अभिभूत होने पर उन पात्रों के लिए भी जाति भाषा का निर्देश भरत मुनि ने दिया है।

दारिद्रयाध्ययनाभावयदृच्छादिभिरेव वा

ऐश्वर्येण प्रमत्तानां दारिद्रयेव प्लुतात्मानम्

जन्मान्तस्यापि पठतः संस्कृत न प्रयोजयते्।। [5]

छदम संन्यासी बौद्ध श्रमण तापसी, भिक्षुक बाजीगर आदि के संवाद भी प्राकृत भाषा में रखे जाने चाहिए [6] बालक भूतादि से ग्रस्त व्यक्ति स्त्री प्रकृति के पुरुष, निम्न जाति पुरुष पाखण्डी साधुओं की भाषा भी प्राकृत हो ऐसा निर्देश मुनि को है।[7] किन्तु संन्यासी, साधु, बौद्ध, भिक्षु, वेदपाठी एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण अपनी प्रतिष्ठा एवं स्थिति के अनुरूप आचरण रखने वाले पात्रों की भाषा आर्य भाषा संस्कृत है। महारानी, गणिका, शिल्पी आदि भी संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करें-

परिब्राण्मुनिशाम्येषुं चोक्षेषु श्रोत्रियेषु च
शिष्टां ये चैव लिङ्गस्थाः संस्कृत तेषु योजयेत्।
राज्ञयाश्च गणिकायाश्च शिल्पकार्यास्तथैवच
कालावस्थान्तर कृतं योज्यं पाठयन्तु संस्कृतम्।। [8]

महारानी से जब बात हो रही हो, जब सन्धि वार्ता हो रही हो। विवाह संबन्ध में उदित नक्षत्र के फलादेश में पक्षी की शुभाशुभ ध्वनि विचार में, आर्य भाषा प्रयोग होना चाहिए। क्योंकि नाट्य कला का प्रमुख प्रयोजन जन मन रंजन है। अतः इसके संवाद सरलता पूर्ण एवं लघु रखे जाएं एवं पात्रों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया जाये। अप्सरादि के संवाद अतिभाषा एवं आर्यभाषा में हो। किन्तु इनके द्वारा प्राकृत भाषा का भी प्रयोग रखा जाता है।

छन्दतः प्राकृतं पाठ्यं स्मृतमप्सरसां भुवि
मानुषाणाञ्च कर्तव्यं कारणार्थव्यपेक्षया।। [9]

परन्तु जहाँ हम बर्बर जाति के पात्रों का किरात, आन्ध्र, द्रविड़ आदि का प्रयोग करें तो हमें इनके लिए जाति भाषा का प्रयोग न करके शौरसेनी से मिलती जुलती भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

जाति भाषा की मुख्य सात उपभाषाएँ हैं इसका निर्देश भरत मुनि ने किया है। ये भाषाए हैं मागधी, अवन्ती, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी वाह्लीका एवं दाक्षिणात्या।

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यार्धमागधी
वाह्लीका दक्षिणात्यां च सप्तभाषा प्रकीर्तिताः।। [10]

इन उपभाषाओं के अतिरिक्त कुछ विभाषाऐं भी समाज में प्रचलित है। ये भाषाऐं अत्यन्त निम्न तबके में प्रचलित है। जिनमें प्रमुख है शकारी आभीरी चाण्डाली, शाबरी, द्राविड़ी, आन्ध्री एवं बनेचरों की जंगली भाषाऐं।

अन्तःपुर में कार्य करने वाले, राजपुत्र, चेट, सेठ इनकी भाषा अर्धमागधी होती है। विदूषक एवं हास्य उत्पन्न करने वाले पात्रों की भाषा अवन्तिजा होती है। वही नायिका एवं उसकी सखियों की भाषा शौरसेनी होती है। सैनिक, जुआरी, नगरआरक्षी आदि दाक्षिणात्य भाषा का प्रयोग करें एवं उत्तर भारत में

वाह्लीक भाषा का प्रयोग करेगें।

वही शबर जाति के लोग शकारी भाषा चाण्डाल एवं पुल्कस डोमें की भाषा चाण्डाली प्रयुक्त होगी। कोयला व्यवसायी, व्याध, लकड़हारा श्रमिकों की भाषा एवं जंगल में रहने वालों की भाषा शाबरी रखी जानी चाहिए।

जहाँ पशुपालन कार्य होता हो ऐसे पशुपालकों की भाषा आभीरी या शाबरी यदि पात्र दक्षिणदेशी है तो द्रविड़ी प्रयोग होना चाहिए। सुरंगादि खोदने वाले श्रमिक जेल के पहरेदार, सईस, आपत्ति ग्रस्त नायक अपने स्वरूप को छिपाने वाले पात्र के द्वारा भी मागधी में संवाद रखे जाने चाहिए।

नाटकों में भाषा पात्रों के उत्तम मध्यम अधमत्व के अनुसार प्रयुक्त की जाती है। देवगण, महर्षि, महात्मागण के लिए 'भगवन्' सम्बोधन एवं उनकी स्त्रियों के लिए भगवती शब्द का प्रयोग किया जाता है। [11]

देव, संन्यासी, साधुजन, शास्त्रों के जानकार के लिए भी 'भगवान' सम्बोधन प्रचलित है। ब्राह्मणों के लिए 'आर्य' राजा के लिए महाराज सम्बोधन प्राप्त हैै। उपाध्याय शिक्षक को आचार्य सम्बोधन दिया जाना चाहिए। वृद्ध के लिए तात् सम्बोधन करें। ब्राह्मण वर्ग राजा को उसके नाम या स्वेच्छा से सम्बोधन कर सकता है, और राजा को भी पूज्य मानकर उन्हें क्षमा करना चाहिए। ब्राह्मणों द्वारा मंत्री को आमात्य या सचिव तथा छोटे अधिकारियों का आर्य सम्बोधन दिया जाना चाहिए। [12] समान अवस्था वाले व्यक्ति को वयस्क या नाम से सम्बोधित करें। अधम पात्र उत्तम व्यक्ति का असामान्य अवस्था में नाम लेकर सम्बोधन कर सकता है।

शिल्पी आदि को उनके कार्यानुसार पुकारना चाहिए। जैसे नाटक में सूत्रधार अन्य नट के लिए 'भाव' और उससे निम्न कलाकार के लिए 'मारिष' का संबोधन करता है। समान अवस्था वाले के लिए वयस्क अधम पुरुष के लिए है हो, अरे ओ संबोधन करना चाहिए। [13] सूत के द्वारा रथी को सदैव 'आयुष्मान' चिरंजीव संबोधित किया जाना चाहिए। तपस्वी एवं शान्त स्वभाव के व्यक्ति के लिए साधो संबोधन दें। [14] सेवक युवराज एवं राजकुमार को स्वामी एवं भर्तृदारक संबोधित करे। अधम पात्र के लिए 'अरे' 'सौम्य' भद्रमुख सम्बोधन दिया जाए। [15] नाटक मे जो व्यक्ति जिस कार्य शिल्प विद्या में पारंगत हो

उसे उसी के नाम से सम्बोधित किया जाना चाहिए।

अपने शिष्य या पुत्र को गुरु, वत्स, पुत्र, तात ऐसा सम्बोधन करे। बौद्ध एवं जैन सन्यासियों के लिए भदन्त पाशुपात सम्प्रदाय के साधुओं के लिए नियन् अनुसार सम्बोधन दे।[17] प्रजा एवं सेवक राजा को देव या भर्ता कहकर सम्बोधित करे–

देवेति नृपतिर्वाच्यो भृत्यैः प्रकृतिभिस्तथा
भट्टेति सार्वभौमस्तु नित्यं परिजनेन तु। 18

ऋषिगण वंश परम्परा से राजा का संबोधन करें यथा पौरव विदूषक राजा को वयस्य या राजन् सम्बोधन करें महारानी को दासिया भगवती सम्बोधन करें!

स्त्रियॉ युवावस्था में अपने पति को आर्यपुत्र कहें परन्तु अन्यावस्था में आर्य सम्बोधन करें राजा को महारानी महाराज सम्बोधन करे।

सर्वस्त्रीभिः पतिर्वाच्यः आर्यपुत्रेति यौवने
अन्यदा पुनरार्येति महाराजेति भूपतिः । 19

बड़े भाई को आर्य एवं नाट्यशास्त्र के अनुसार छोटे भाई को उपयुक्त शब्द से बुलाना चाहिए। तपसी स्त्रियों के लिए भगवती सम्बोधन, पूज्य स्त्रियों के भवती सम्बोधन, ग्राम्य स्त्री के लिए भद्रे एवं वृद्धा के अम्बा कहना चाहिए। राज पत्नियों को सेवक एवं दासियां, भाट्टिनी, स्वामिनी एवं देवी सम्बोधन करे। पटरानी को सदैव 'देवी' कहा जाना चाहिए। अविवाहित, राजकुमारियों को भर्तृदारिका कहना चाहिए। बड़ी बहन को भगिनी एंव छोटी बहन को सम्बोधन 'वत्से' होना चाहिए। ब्राह्मणी साधु की स्त्री ब्रह्मचारिणी स्त्री को आर्या कहना चाहिए। पति अपनी पत्नी को सदैव आर्या ऐसा सम्बोधित करे अथवा पिता या पुत्र के नाम से बुलावे। 20 स्त्रियाँ समवयस्का सखियों को 'हला' ऐसा संबोधन दें। दासी के लिए 'हजे' विशेषण दिया गया है। वेश्या के लिये दास दासी 'अज्जुका' का प्रयोग करते है। 21 बड़ी वृद्धा के लिए अत्ता प्रयोग प्राप्त है। प्रणयावस्था में पति पत्नी को प्रिये कहे अन्य को आर्या ही संबोधन करें।

प्रियेति भार्या श्रृङ्गारे वाच्या राज्ञेतरेण वा
पुरोध: सार्थवाहानां भार्यास्त्वार्येति सर्वदा ।। 22

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में सभी पात्रों के अनुरूप भाषा के निर्देश प्राप्त है वही उन सभी पात्रों के शिष्ट विशेषणात्मक सम्बोधन भी भरतमुनि ने दिए हैं।

सन्दर्भः–

1.
2.
3. नाट्यशास्त्र 18/28
4. नाट्यशास्त्र 18/29
5. नाट्यशास्त्र 18/33
6. नाट्यशास्त्र 18/34
7. नाट्यशास्त्र 18/35
8. नाट्यशास्त्र 18/36–37
9. नाट्यशास्त्र 18/43
10. नाट्यशास्त्र 18/46
11. नाट्यशास्त्र 19/3
12. नाट्यशास्त्र 19/6
13. नाट्यशास्त्र 19/10
14. नाट्यशास्त्र 19/11
15. नाट्यशास्त्र 19/12
16. नाट्यशास्त्र 19/13
17. नाट्यशास्त्र 19/13
18. नाट्यशास्त्र 19/16
19. नाट्यशास्त्र 19/19
20. नाट्यशास्त्र 19/26
21. नाट्यशास्त्र 19/28
22. नाट्यशास्त्र 19/29

नाम	:	कल्पना द्विवेदी
जन्मतिथि	:	15 जून 1973
जन्मस्थान	:	मैनपुरी (उ0प्र0) भारतम्
पिता	:	आचार्य श्री लालबिहारी शास्त्री
माता	:	श्रीमती कृष्णा देवी द्विवेदी
गुरुवंश	:	प्रो0 राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो0 इच्छाराम द्विवेदी प्रो0 रमाकान्त शुक्ल, पं0 श्यामाचरण त्रिपाठी
शिक्षा	:	एम0ए0 (1995) आचार्य पुराणेतिहास (2005) बी0एड0 1996 पी0एच0डी0 (2002)
प्रकाशित शोध पत्र	:	सम्प्रति चालीस प्रकाशित शोध पत्र
प्रकाशित पुस्तक	:	बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक संस्कृत नाटक एक अध्ययन (2011) पुराण वैभवम् (2014)
सम्पादन	:	संस्कृत वाङ्मय में अर्थ चिन्तन 2014 सुरभारती शोध पत्रिका का 2008 से सम्प्रति तक आचार्य श्री अभिनन्दन ग्रन्थ (1999) पूर्णमदः पूर्णमिदम् का सहसम्पादन (2011)
यन्त्रस्थ रचनाएं	:	श्री हरि पदावली कविताएं
अप्रकाशित रचनाएं	:	गणेश पुराण का भाषानुवाद क्या सोचा है ? कभी (हिन्दी भाषा में) रुबाईयां (उर्दू)